## हिलने लगी धरती

पचदेश में शत्रु देश के जासूसों ने विद्रोह करवा दिया। भाट कवि ने राजा नरसिंह के दरबार तक पहुँच बना महामंत्री रुद्रदेव को शक्तिहीन कर दिया। कुछ दिन बाद राज्य में खबर फैल गई कि रुद्रदेव विद्रोहियों के हाथों मारे गए। पर हुआ उलटा। भाट कवि अपनी ही चाल मे उलझ गया । रुद्रदेव तो जिंदा निकले…। [गहरी चाल]

बहेलिये को क्या पता कि जिस पक्षी को उसने पकड़ा है वह शापित मुनि-कुमार है। बेटे के पैर से परेशान बहेलिये ने देखा, चोंच में जड़ी-बूटी लिए अनेक पक्षी उसके घर की मुँडेर पर आ बैठे हैं। [बेटे का पैर]

आलसी हरिया को मिल गए जादुई कुदाल और कुल्हाड़ा। उसने लोगों को डराना शुरू कर दिया। पर मिला क्या ? अपना कुदाल-कुल्हाडा ही गँवा बैठा। [मीठे बेर]

देवपति को कम सुनता था। वह लड़की तुतलाकर बोलती थी। दोनों मिले तो शादी को राजी हो गए। फिर उनकी मुलाकात हुई एक मेंढक से…। [मिठाई दो]

जमींदार के खेत में हल जोतते बेलाराम को पेड पर हार मिला। जमींदार ने कहा—"मेरा खेत, मेरा पेड, अतः हार भी मेरा।" बेलाराम ने अपनी बात कही तो जमींदार ने अपने कान पकड़ लिए। बोला—"माफ कर दो बेलाराम।" [घोंसले में हार]

शीतक के बहकावे में आकर माणिक की बेटी सुधा को सब मनहूस समझने लगे। कोई उससे शादी को तैयार न हुआ तो एक पेड से उसकी शादी कर दी गई। पर पेड पर ऐसा कौन बैठा था, जिससे सारे लोग सुधा के एहसानमंद हो गए ? [घर चलो]

श्रीनिवास वत्स की ऐसी ही दर्जनों कहानियों को इस पुस्तक मे संगृहीत किया गया है। बच्चे तो बच्चे, बडे भी इन्हें पूरा पढे बिना नहीं रह सकेंगे। अनूठे अंदाज, अनूठे ताने-बाने से रची ये रचनाएँ मनोरंजन का खजाना हैं। पढकर देखिए तो सही…।



ISBN—81-88123-11-0

मूल्य : रु० 200.00



हि

पचदेश में शत्रु देश के
कवि ने राजा नरसिंह
रुद्रदेव को शक्तिहीन
खबर फैल गई कि रु
हुआ उलटा। भाट क
रुद्रदेव तो जिंदा निक

बहेलिये को क्या पता
शापित मुनि-कुमार है
देखा, चोंच में जड़ी-बू
पर आ बैठे है।

आलसी हरिया को f
उसने लोगों को डरा
अपना कुदाल-कुल्हा

देवपति को कम सु
थी। दोनों मिले तो
मुलाकात हुई एक मे

जमींदार के खेत में ह
जमींदार ने कहा—"
बेलाराम ने अपनी ब
लिए। बोला—"माफ

शीतक के बहकावे
मनहूस समझने लगे।
पेड से उसकी शादी
जिससे सारे लोग 

श्रीनिवास वत्स की
संगृहीत किया गया
बिना नहीं रह सकें
रचनाएँ मनोरंजन

[illegible]

(बाल-कथाएँ)

पचदेश में शत्रु देश
कवि ने राजा नर
रुद्रदेव को शक्ति
खबर फैल गई कि
हुआ उलटा। भाट
रुद्रदेव तो जिंदा

बहेलिये को क्या
शापित मुनि-कुमा
देखा, चोंच मे जड
पर आ बैठे हैं।

आलसी हरिया क
उसने लोगों को
अपना कुदाल-कुद

देवपति को कम
थी। दोनों मिले
मुलाकात हुई एक

जमींदार के खेत मे
जमींदार ने कहा-
बेलाराम ने अपनी
लिए। बोला—"म

शीतक के बहका
मनहूस समझने ल
पेड से उसकी शाद
जिससे सारे लोग

श्रीनिवास वत्स क
सगृहीत किया ग
बिना नहीं रह स
रचनाएँ मनोरंजन



हिमाचल पुस्त
गाधीनगर, दिल्ली

# हिलने लगी धरती

श्रीनिवास वत्स

पंचदेश में शत्रु दे
कवि ने राजा न
रुद्रदेव को शक्ति
खबर फैल गई कि
हुआ उलटा। था
रुद्रदेव तो जिंदा

बहेलिये को क्या
शापित मुनि-कुम
देखा, चोंच में जड़
पर आ बैठे हैं।

आलसी हरिया
उसने लोगों को
अपना कुदाल-कु

देवपति को कम
थी। दोनों मिले
मुलाकात हुई ए

जमींदार के खेत
जमींदार ने कहा
बेलाराम ने अपन
लिए। बोला—"

शीलक के बहक
मनहूस समझने ल
पेड़ से उसकी शा
जिससे सारे लोग

श्रीनिवास वत्स
संगृहीत किया ग
बिना नहीं रह स
रचनाएँ मनोरंजन

ISBN—81-88123-11-0



प्रकाशक

हिमाचल पुस्तक भंडार
IX/221, सरस्वती भंडार, गांधीनगर
दिल्ली-110031

प्रथम संस्करण

2002

कला-पक्ष

पार्थ सेनगुप्त

मूल्य

दो सौ रुपये

मुद्रक

एस०एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

HILANE LAGI DHARTI
(Short Stories in Hindi for Childrer
by Srinivas Vats
Price Rs 200 00

[illegible]

बंधुवर श्रीनिवास वत्स हरियाणा के अकेले बाल-साहित्यकार हैं, जिन्हें बाल-साहित्य का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है। 'नंदन' से उनका संबंध पिछले तीस बरस से है। उनकी अनेक कथाएँ हमने प्रकाशित की हैं। उन्हें लाखों पाठकों ने पढ़ा है, सराहा भी है।

सहज-सरल भाषा, रोचक शैली और बतकही अंदाज—यह उनकी कहानियों की पहचान है। बाल-पाठकों को और क्या चाहिए ! उन्होंने जन-जीवन से कथानक चुनकर बच्चों के लिए प्रेरक ढंग से बुने हैं। मैं उनकी लेखनी का प्रशंसक और उत्सुक पाठक हूँ।

कहानियों के अलावा बाल-एकांकी तथा उपन्यास भी वत्स जी ने लिखे हैं। बड़ों के लिए हास्य-व्यंग्य पर उनकी कई पुस्तकें आई हैं। चर्चित भी हुई हैं।

प्रसन्नता है कि उनकी बाल-कहानियों का यह दसवाँ संकलन प्रकाशित हो रहा है। विश्वास है, इस गंगोत्री में जो भी गोते लगाएँगे, भरपूर आनंद मिलेगा।

बधाई एवं अभिनंदन

संपादक 'नंदन'

# अपनी बात

प्रिय बच्चो !

कभी किसी दिन जब आपका कोई मित्र आपके पास नहीं होता तो आप एकांत में बैठकर कुछ सोचते हैं। कुछ पुरानी यादें चलचित्र की भाँति आपके मस्तिष्क में चित्रित होने लगती हैं। ऐसे में कभी-कभी भविष्य के सुंदर रंग-बिरंगे सपने भी आकार लेने लगते हैं। आप उस हर पुरानी स्मृति को सँजोकर रखना चाहेंगे, जो आपको सुखद लगी हो। दुखांत घटनाओं को हर कोई भूलना चाहता है।

सुखांत और दुखांत के विषय में तो आप बड़े होकर पढ़ना, लेकिन अब इतना समझ लो कि वह कहानी, जिसमें मुख्य पात्र सत्य बोलते हों, परोपकार का कार्य करते हों या मानवता की बात करते हों और वे अपने लक्ष्य में सफल भी होते हों तो कहानी प्रेरक, शिक्षाप्रद एवं सुखद बन जाती है।

लेकिन शिक्षा के नाम पर हम अपने आदर्श किसी पर थोप भी तो नहीं सकते। भला थोपी गई चीज को कोई कब तक स्वीकारेगा ?

हर समझदार व्यक्ति जीवन में एक लक्ष्य लेकर चलता है। हमारा लक्ष्य ऐसा होना चाहिए जिससे राष्ट्र का, मानवता का भला हो। इन कहानियों के पात्र भी ऐसे ही हैं। ये आपका मनोरंजन तो करेंगे ही, साथ में कदम-कदम पर प्रेरित भी करते रहेंगे।

इन कहानियों को नंदन, बाल भारती तथा अन्य बाल-पत्रिकाओं ने भी प्रकाशित किया है। आप इन पर अपनी प्रतिक्रिया अवश्य लिखिएगा।

आपका मित्र

**श्रीनिवास वत्स**

## कथा-क्रम



# मालपूए

सुखपुरा गाँव में धनिकलाल नामक एक किसान रहता था। उसकी पत्नी शांता बहुत क्रोधी एवं कामचोर थी। वह हर समय कोई न कोई बहाना बनाकर चारपाई पर लेटी रहती। बेचारा धनिकलाल दिन-भर खेत में काम करता और शाम को आकर खाना भी पकाता।

शांता बहुत चटोरी थी। सुबह धनिकलाल के चले जाने के बाद वह अपने लिए घर में बढ़िया पकवान बनाती और खाकर सो जाती। रसोई का सारा सामान उसी तरह रख देती जैसे धनिकलाल छोड़ गया था ताकि पता न चले कि उसने पीछे से मौज उड़ाई है।

शाम को जब वह उसे खाना देता तो जरा-सा खाकर कराहते हुए कहती—''मुझे तो भूख ही नहीं लगती। शरीर टूटा जा रहा है। मैं कुछ नहीं खाऊँगी।''

धनिकलाल ने उसे कई वैद्य-हकीमों को दिखाया। सब यही कहते, दवा की जरूरत नहीं। परिश्रम करेगी तो ठीक हो जाएगी।

चिकित्सकों की इस सलाह से शांता कुढ़ जाती। वह उन्हें ही बुरा-भला कहने लगती। धनिकलाल उसकी इन हरकतों से बहुत तंग आ चुका था।

शांता सुबह सूर्य निकलने के पहले पति को जगा देती ताकि वह घर में झाड़ू-बरतन का काम निबटा दे।

गहरी नींद में सोते धनिकलाल को उठना पड़ता। न उठता तो शांता चिल्लाना शुरू कर देती—"अरे, तुम तो सारी रात सोते हो। मैं रात-भर जागती हूँ। उठो, घर में झाड़ू लगा लो। रात के बरतन पड़े हैं, उन्हें भी साफ कर लो।"

शांता इतनी जोर से बोलती कि पड़ोसी तक उठ बैठते। कलह से डरता बेचारा धनिकलाल सब सहे जा रहा था।

घी-चावल, दाल जल्दी समाप्त होते देख एक दिन धनिकलाल ने पूछा—"पता नहीं, पीछे से कौन भूत-प्रेत आकर रसोई का सामान खा जाता है! सुबह घी का बरतन ऊपर तक भरा था, अब एक-चौथाई कम हो गया है।"

शांता गुस्से से उफन पड़ी—"तुम्हें मेरी जान से भी ज्यादा घी की चिंता है!"

धनिकलाल चुप हो गया। वह शांता को भली-भाँति समझ चुका था, परंतु लोक-लाज के डर से चुप रहता था।

बिजाई के दिनों में एक दिन धनिकलाल खेत में हल जोत रहा था, तभी उसे ध्यान आया कि बीज घर में ही भूल आया। वह तुरंत घर की ओर चल पड़ा। आकर देखा तो शांता रसोई में बैठी मालपूए बना रही थी।

धनिकलाल को अचानक वापस आया देख वह सहम गई। धनिकलाल को पहले ही उस पर शक था, पर आज तो रँगे हाथों पकड़ी गई थी।

उसने पूछा—"जब तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं, तो यह सब क्या कर रही हो?"

बात टालते हुए शांता बोली—"तुम मेरे लिए कितनी मेहनत करते हो। सोचा, थके-हारे आओगे, क्यों न तुम्हारे लिए मालपूए बना दूँ!"



। उसकी चालाकी समझ गया। अच्छा मौका था।
नारे मालपुए खा लिए। शांता देखती रह गई।

धनिकलाल का एक मित्र था—चंदनदास। वह उसके पड़ोस में ही रहता था। धनिकलाल ने अपनी समस्या उसे बताई। चंदनदास तो शांता के व्यवहार को शुरू से ही देख रहा था। उसने धनिकलाल से कहा—"दौलतगंज में मेरा एक परिचित वैद्य है। वह तुम्हारी पत्नी का सही इलाज कर देगा। तुम मेरे कहे अनुसार चलो।"

धनिकलाल ने स्वीकृति में गरदन हिला दी। चंदनदास ने उसे कुछ समझाया। सुनकर धनिकलाल प्रसन्न हो गया।

अगले दिन चंदनदास अपने परिचित वैद्य को लेकर धनिकलाल के घर पहुँचा।

धनिकलाल ने पत्नी को बताया—"यह दौलतगंज के वैद्यराज हैं। तुम्हारे जैसे बहुत-से रोगियों का इलाज कर चुके हैं। आज तुम्हें देखने आए हैं।"

वैद्य को देख शांता जोर-जोर से कराहने लगी।

वैद्य ने शांता को देखा। बोला—"सचमुच इन्हें तो भयंकर रोग है। इनके शरीर में शक्ति तो है ही नहीं। बेचारी काम करें तो कैसे? इन्हें तो इलाज एवं पौष्टिक भोजन की सख्त जरूरत है।"

आज तक जो भी वैद्य आए, वे काम करने तथा हलके भोजन की सलाह देते थे। इस वैद्य ने तो शांता के मन की बात कह दी।

वह खुश हो गई। पति से बोली—"मेरा इलाज इन्हीं वैद्य जी से कराओ। यह मेरे रोग को समझते हैं।"

वैद्य ने कहा—"मेरा इलाज दो माह तक चलेगा और एक शर्त पर होगा।"

"क्या शर्त है?" शांता ने पूछा।

वैद्य ने कहा—"मेरी दवा बहुत महँगी है। तुम्हें दो माह तक लगातार दवा लेनी होगी। बीच में अचानक दवा बंद करने से शरीर में जहर फैल जाएगा। उससे तुम्हारी मृत्यु भी हो सकती है।"

शांता ने सोचा, यह तो और भी अच्छा है। उपचार लम्बा चलेगा तो ज्यादा दिन आराम करूँगी और स्वादिष्ट भोजन भी मिलेगा। बोली—"मैं दवा हर रोज खा लूँगी। आप इलाज शुरू करो।"

वैद्य सुबह घूमने जाते तो दो-चार पेड़ों के कड़वे पत्ते तोड़ लाते। उन्हीं का रस निकालकर शांता को पिला देते। दवा के साथ उसे बढ़िया स्वादिष्ट भोजन भी दिया जाता।

तीन दिन बीत गए। चौथे दिन धनिकलाल ने शांता से कहा—"तुम्हारी दवा तो बहुत महँगी है। तीन दिन में सारे पैसे खर्च हो गए। मैं अब और इतना महँगा इलाज नहीं करा सकता।"

शांता बोली—"तुम्हें पहले सोचना था। अब बीच में दवा बंद करने से तो मैं मर जाऊँगी।"

धनिकलाल ने कहा—"अब तो एक ही उपाय है। घर का सारा सामान गिरवी रखना पड़ेगा।"

अगले दिन धनिकलाल घर के सारे बिस्तर और पलंग उठाकर चंदनदास के घर रख आया। उस रात शांता को जमीन पर सोना पड़ा। पर क्या करती, इलाज तो बीच में बंद हो नहीं सकता था।

दो दिन बाद धमिकलाल ने कहा—"आज तो रसोई के सारे बरतन भी बिक गए। भूखों मरना पड़ेगा। अब और इलाज कैसे कराएँगे ?"

शांता को डर था, कहीं दवा बंद होने से उसकी मृत्यु न हो जाए। उसने हाथ जोड़कर पति से कहा—"हम रूखी-सूखी खा लेंगे। जैसे भी हो, दो माह तक दवा का प्रबंध करना ही होगा।"

"पर अभी तो पंद्रह दिन ही गुजरे हैं। मैं और कुछ नहीं कर सकता।" धनिकलाल ने गुस्से से कहा।

अब तो शांता बुरी तरह डर गई। उसे अपनी मृत्यु स्पष्ट नजर आने लगी।

अगले दिन वैद्य ने कहा—"मुझे और पैसे दो ताकि दवा बना सकूँ।"

शांता सोचती रही, वह दवा शुरू न करती तो ही अच्छा था। पर अब क्या हो सकता था!

सुबह धनिकलाल ने कहा—"तुम एक काम करो। पुलिया वाले खेत में कपास पक गई है। मेरे साथ चलो, उसे बीन लेते हैं। बेचकर तुम्हारी दवा ले लेंगे।"

बेचारी शांता को न चाहते हुए भी जाना पड़ा। एक सप्ताह खेत में काम किया। धनिकलाल प्रतिदिन सारी कपास चंदनदास के घर रख देता और पैसे ले आता।

अगले सप्ताह धनिकलाल फिर बोला—"आज तुम्हें मेरे साथ बाजरा और मक्का की फसल काटने चलना होगा। उसे बेचकर जो पैसे मिलेंगे, उन्हीं से भोजन और दवा ले सकेंगे।"

इस प्रकार धनिकलाल प्रतिदिन शांता को पौ फटने से पूर्व उठा देता। अपने साथ खेतों में ले जाता। बेचारी दिन-भर जी तोड़ मेहनत करती। शाम को घर आकर खाना भी पकाती।

इस तरह एक महीना बीत गया।

वैद्य ने पूछा—"तुम्हें दवा से लाभ हो रहा है या नहीं?"

शांता ने सोचा, यदि मना करूँगी तो इलाज और लम्बा हो जाएगा। बेचारी ने डर से कह दिया—"अब तो मैं बहुत ठीक हो गई हूँ। दिन-भर काम कर लेती हूँ, फिर भी नहीं थकती।"

अगले महीने धनिकलाल ने खेतों में जुताई करके नई फसल बो दी। पकी हुई फसल की कटाई अकेली शांता को करनी पड़ी। वह तो इलाज के चक्कर में आराम करना भी भूल गई।

जैसे-तैसे दो माह पूरे हुए। शांता ने राहत की साँस ली। बोली—"वैद्य जी अब और इलाज की तो नहीं?"



ा—"तुम इसी तरह मेहनत करती रहीं तो और
रत नहीं पड़ेगी। यदि तुमने काम बंद कर दिया तो
रंभ करना पड़ेगा।"

मेहनत की आदत हो गई थी। बोली—"मैं कड़वी
तंग आ गई हूँ। आप जो कहेंगे, मुझे स्वीकार है।
ो सामान बिक गया। उसे भी दोबारा खरीदना होगा।
सा?"

बोला—"भाभी, आपका सारा सामान मेरे घर गिरवी
पके घर भिजवा देता हूँ। आप धीरे-धीरे उधार

शांता ने राहत की साँस ली। कहा—"भाई साहब ! आपकी बड़ी कृपा होगी। हम जल्दी ही आपके पैसे लौटा देंगे।"

धनिकलाल चंदनदास की ओर देखकर मुस्करा रहा था। उसे तो पता ही था कि सामान अभी भी उसी का है। घर की चीजें गिरवी रखने और नकली वैद्य की चाल तो चंदनदास ने शांता को सुधारने के लिए ही चली थी।

□

# एक के बाद एक

पुराने समय में एक रियासत थी—शंकरगढ़। वहाँ के राजा नरहरि सिंह थे। वह युद्धकला में जितने पारंगत थे, प्रजा के लिए उतने ही दयालु भी थे। उनकी रानी का नाम शांति देवी था। वह अत्यंत रूपसी और गुणवती थीं। राजा नरहरि सिंह के शासन में प्रजा सुखी एवं समृद्ध थी।

एक दिन नरहरि सिंह को दासी ने शुभ सूचना दी—महाराज के घर पुत्र पैदा हुआ है। राजकुमार के जन्म का समाचार सुनते ही उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। कितने ही वर्षों से राजा-रानी पुत्रप्राप्ति की इच्छा लिए कुलदेवी के मंदिर में पूजा-अर्चना कर रहे थे।

समाचार सुन पूरी रियासत में खुशी की लहर दौड़ गई। नरहरि सिंह ने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए दूर-दूर से विद्वान् एवं साधु-संन्यासी शंकरगढ़ पधारे।

हवन और भोज कई दिन तक चलते रहे। अंतिम दिन एक बूढ़ा संन्यासी यज्ञस्थल पर आया। उसके चेहरे पर अद्भुत तेज था। उसने आते ही राजा से कहा—"राजन्! मैं तीर्थस्थान को जा रहा था। मार्ग में पता चला कि आपके घर पुत्र पैदा हुआ है इसलिए उसे आशीर्वाद देने चला आया।"

बूढ़े संन्यासी की बात सुनकर राजा ने दासी को आदेश दिया—"राजकुमार को यहाँ ले आओ।"

थोड़ी देर में महारानी पुत्र को लेकर यज्ञस्थल पर उपस्थि गईं।

बूढ़े संन्यासी ने राजकुमार को अपनी गोद में ले लिया कुछ सोचने लगे। यज्ञस्थल पर उपस्थित लोग शांत होकर ही ओर देख रहे थे।



संन्यासी ने गंभीर होकर कहा—"राजन्! मेरा आशीर्वाद है कि बड़ा होकर यह एक आँख से देखेगा।"

लोगों ने सुना तो अवाक् रह गए। यह कैसा आशीर्वाद? राजा-रानी भी सहम गए। पर संन्यासी को कोई क्या कह सकता था!

कुछ क्षण चुप रहकर बूढ़ा संन्यासी फिर बोला—"भगवान् ने चाहा तो यह एक कान से सुनेगा।"

संन्यासी की बातें किसी की समझ में नहीं आ रही थीं। उन्हें लग रहा था, संन्यासी आशीर्वाद नहीं, शाप दे रहा है।

बूढ़े संन्यासी ने राजकुमार के हाथ को छुआ। फिर बोला—"ईश्वर करे, यह एक हाथ की कमाई खाए।"

अब तो राजा की सहनशक्ति जवाब दे गई। उनका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। इच्छा हुई—संन्यासी को धक्के मारकर यज्ञस्थल से बाहर निकाल दें। लगातार कितना अशुभ बोले जा रहा है!

पर संन्यासी की बात सुन राजपंडित सुरेंद्र शास्त्री मंद-मंद मुस्करा रहे थे।

इसके बाद संन्यासी ने कुमार के पैर को हाथ लगाया। बोला—"परमात्मा की कृपा हुई तो यह एक पैर से सँभलकर चलेगा।"

इतना सुनते ही नरहरि सिंह सिंहासन से उठ खड़े हुए। उन्होंने संन्यासी से कहा—"इतने वर्षों की प्रतीक्षा के बाद राजमहल में पुत्र पैदा हुआ है। आपने उसके लिए इतनी अशुभ बातें कहीं। आप संन्यासी हैं अतः मैं आपको दंड नहीं दे सकता। अगर आपके स्थान पर कोई और होता तो मैं उसे अभी मृत्युदंड दे देता। लगता है, बुढ़ापे में आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।"

राजा को क्रोधित देख किसी की हिम्मत नहीं हुई कि उन्हें शांत कर सके। राजा गुस्से में और भी न जाने क्या-क्या कह गए, पर बूढ़ा संन्यासी चुप रहा।

अचानक राजपंडित सुरेंद्र शास्त्री उठे। बो
संन्यासी कभी स्वार्थ की बातें नहीं करता। वह हमे
की बात कहता है। बूढ़े संन्यासी ने जो आशीर्वाद
छिपे रहस्य को आप समझ नहीं पाए, इसीलिए
हैं।''

राजा ने गुस्से में आकर पूछा—''राजकुमार व



लँगड़ा-लूला बनाने वाले आशीर्वाद में भला क्या रहस्य हो सकता है ?''

शास्त्री जी बोले—''महाराज! संन्यासी ने कहा कि राजकुमार एक आँख से देखे। इसका अर्थ है, राजा बनने के बाद यह पूरी प्रजा को एक ही नजर से देखे। न्याय करते समय अपना-पराया, अमीर-गरीब, सब एकसमान होने चाहिए। श्रेष्ठ राजा उसे ही माना जाता है, जो सबको एकसमान समझकर न्याय करे।

'' वृद्ध संन्यासी ने कहा है कि राजकुमार एक कान से सुने। इसका अर्थ है कि वह प्रजा की बातें एक कान से सुनकर दूसरे कान से न निकाले, बल्कि प्रिय व अप्रिय दोनों तरह की बातें सुनकर मस्तिष्क में बैठाए। सोच-विचारकर निर्णय करे।

'' तीसरा आशीर्वाद था कि कुमार बड़ा होकर एक हाथ की कमाई खाए। इसका तात्पर्य यह है कि राजा अपने ऊपर बहुत कम धन खर्च करे। महान् व्यक्ति एक हाथ की कमाई खाते हैं और दूसरे हाथ की कमाई दान कर देते हैं, इसलिए संन्यासी का भाव है—राजकुमार दानवीर हो।

'' इसी प्रकार सँभलकर चलने का अर्थ है—हर कदम सोच-विचारकर उठाना। बुद्धिमान व्यक्ति एक पैर ठीक से जम जाने पर ही दूसरा पैर उठाते हैं। तभी वे आगे बढ़ पाते हैं। ''

यह व्याख्या करने के बाद राजपंडित बोले—''अब आप बताइए, बूढ़े संन्यासी के वचन राजकुमार के लिए हितकर हैं या अहितकर ?''

राजा को अपने कहे पर लज्जित होना पड़ा। उसने बूढ़े संन्यासी के पैर पकड़ लिए। कहा—''हे साधु महाराज! मैं अज्ञानवश आपकी बातों का भाव न समझ सका। कृपया मुझे क्षमा कर दें।''

बूढ़े संन्यासी ने मुस्कराकर कहा—"राजन्! गुस्सा करना तो हम साधुओं को शोभा ही नहीं देता। इसीलिए मुझे आपकी बातों पर क्रोध नहीं आया। राजकुमार शंकरगढ़ का भावी राजा है। भला उसके लिए मैं अशुभ कामना क्यों करूँगा?"

सभी लोग बूढ़े संन्यासी की जय-जयकार करने लगे। तभी संन्यासी ने अपना कमंडल उठाया और तीर्थस्थान को चल दिए।



# घोंसले में हार

किसी गाँव में कुंदनलाल नामक एक जमींदार रहता था। उसके पास काफी जमीन-जायदाद थी, पर वह था महाकंजूस।

उसने खेतों में काम करने के लिए बेलाराम नामक युवक को अपना नौकर रखा। बेलाराम सुबह-सवेरे उठकर खेतों में चला जाता। दिन-भर हल जोतता—बिजाई के समय बिजाई और कटाई के समय कटाई करता। उसकी पत्नी भी उसके काम में हाथ बँटाती।

एक दिन बेलाराम खेत में हल जोत रहा था। दोपहर का समय था। कड़ी धूप के कारण उसने कुछ देर विश्राम करने की सोची। उसने बैलों को खोल दिया और स्वयं पेड़ के नीचे बैठकर सुस्ताने लगा।

अचानक एक छोटा पक्षी पेड़ से लुढ़ककर उसके पास आ गिरा। बेलाराम ने ऊपर देखा। पेड़ पर एक घोंसला था और घोंसले पर चील मँडरा रही थी। उसको समझते देर न लगी कि यह घोंसला चील का ही है। यह नन्हा बच्चा भी उसी घोंसले से लुढ़ककर नीचे गिरा है।

बेलाराम सोचने लगा, 'यह बच्चा तो उड़ भी नहीं सकता। यदि इसे घोंसले में नहीं पहुँचाया तो यह तड़प-तड़पकर यहीं दम तोड़ देगा।'

उसे दया आ गई। उसने कपड़े से पकड़कर बच्चे को उठाया और पेड पर चढ गया चील का घोंसला काफी ऊपर था फिर

भी बेलाराम सावधानी से बच्चे को थामे घोंसले तक गया।



ज्यों ही वह बच्चे को घोंसले में रखने लगा, उसकी नजर एक चमकदार चीज पर पड़ी। उसने उठाकर देखा तो वह सोने का हार था।

बेलाराम ने सुना अवश्य था कि चील अपने घोंसले में सोने के आभूषण लाकर रख देती है। पर अचानक यह सब मिल जाएगा, इसकी तो उसने कल्पना भी न की थी। उसने हार को जेब में डाला और बच्चे को घोंसले में लिटा दिया। फिर धीरे-धीरे पेड़ से नीचे उतर आया।

नीचे आकर जेब से हार निकाला तथा गले में पहनकर देखने लगा। तभी अचानक जमींदार खेत में आ गया। उसने देखा, बेलाराम हल जोतने की बजाय छाँव में बैठा है। उसने उसे डाँटा—"मैंने तुझे हल जोतने भेजा था या विश्राम करने?"

अकस्मात् उसकी नजर बेलाराम के गले में पड़े सोने के हार पर गई। उसने पूछा—"यह हार कहाँ से लाए हो?"

बेलाराम ने पूरी कहानी सच-सच बता दी। जमींदार ने कहा—"तब तो यह हार तुम्हें मुझे देना होगा, क्योंकि हार घोंसले में था और घोंसला पेड़ पर। पेड़ मेरे खेत में है। इस प्रकार ये सब चीजें मेरे खेत की हैं और मेरे खेत की हर वस्तु पर मेरा अधिकार है।"

जमींदार की बात सुन बेलाराम को बहुत दुःख हुआ। उसने कहा—"यदि मैं चील के बच्चे को घोंसले में रखने न जाता तो यह हार कहाँ से मिलता?"

जमींदार बोला—"मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। मैं तो बस इतना जानता हूँ कि मेरे खेत की हर चीज पर सिर्फ मेरा अधिकार है।" इतना कहकर उसने बेलाराम से हार ले लिया।

उदास होकर बेलाराम घर लौट आया। उसकी पत्नी ने उदासी का कारण पूछा तो उसने पूरी बात कह सुनाई

इस पर बेलाराम की पत्नी को बहुत गुस्सा आया। उसने बेलाराम से कहा—"हमें पंचों से जमींदार की शिकायत करनी चाहिए। पंचायत अवश्य न्याय करेगी।"

शाम को बेलाराम मुखिया के पास गया। उन्हें हार वाली बात बताई। मुखिया ने न्याय दिलाने का भरोसा दिया।

अगले दिन पंचायत बैठी। बेलाराम और जमींदार कुंदनलाल भी उपस्थित थे। बेलाराम ने पंचायत में पूरी बात बताई। अब जमींदार की बारी थी। वह अकड़कर बोला—"पेड़ मेरे खेत में है। यदि पेड़ न होता तो चील घोंसला कैसे बनाती? तब हार कहाँ से आता? मेरे खेत की हर वस्तु पर मेरा अधिकार है।"

अब पंचों ने बेलाराम से पूछा। बेलाराम हाथ जोड़कर बोला—"मुझे हार का लालच नहीं है। मैं तो चाहता हूँ कि जिसका हार है, उसे मिल जाए; क्योंकि यह हार जमींदार का तो है नहीं।"

गाँव के बहुत-से लोग वहाँ खड़े होकर पंचायत की कार्यवाही देख रहे थे। उनमें साहूकार रतनलाल भी था। करीब एक वर्ष पहले उसके घर चोरी हुई थी। उसने थाने में शिकायत भी की थी। उसने सोचा—'कहीं वह हार मेरा ही न हो!' उसने पंचों से प्रार्थना की—"मैं एक बार हार देखना चाहता हूँ।"

पंचों ने जमींदार से कहा—"तुम हार लाकर रतनलाल को दिखाओ।"

परंतु जमींदार न माना। उसने कहा—"मैं हार नहीं दूँगा। यह हार मेरा है। मेरे पेड़ पर मिला है।"

पंच मुश्किल में पड़ गए। क्या फैसला दें? तभी मुखिया को एक उपाय सूझा। उसने कुंदनलाल से कहा—"ठीक है, हम तुम्हारी बात मान लेते हैं। तुम्हारा कहना है कि जिसकी जगह में जो चीज हो उस पर उसी का अधिकार होना चाहिए "



मुखिया जी!'' जमींदार ने प्रसन्न होते हुए कहा।
ईं जो हार मिला है, उसे चील कहीं न कहीं से उठाकर
ी। इस दृष्टि से वह चील चोर सिद्ध होती है। अब हम
तो सजा दे नहीं सकते। क्यों, ठीक है न?'' मुखिया ने
, जमींदार से पूछा।
मुखिया जी!'' जमींदार कुछ उलझ गया था।
फिर सुनो नियमानुसार चोर के साथ साथ चोर को आश्रय

देने वाला भी दंड का भागीदार होता है। तुमने अपने पेड़ पर एक चोर चील को आश्रय दिया, अतः तुम्हें दंड मिलेगा। पंचो, अब आप ही इनको दंड दें।'' कहकर मुखिया चुप हो गया।

जमींदार मुखिया की बातों में फँस गया। अब अगर हार न देता तो दंड मिलता और हार देने का मतलब था—हार से हाथ धो बैठना। उसे बचने का कोई उपाय नजर नहीं आया। अंत में बोला—''मैं अपनी गलती स्वीकार करता हूँ। मैं हार वापस करने को तैयार हूँ।'' फिर उसने हार निकाला और पंचों को सौंप दिया।

हार देखते ही रतनलाल चिल्ला उठा—''यह तो वही हार है, जो चोर चुरा ले गए थे! इसे जौहरी चाचा ने बनाया था। वह भी जरूर पहचान लेंगे।''

जौहरी को बुलाया गया। उसने भी हार को पहचान लिया। पंचों ने राय-विचार किया। अपना फैसला सुनाया—''यह हार रतनलाल को दिया जाता है। जमींदार ने इसे हड़पने की कोशिश की, अतः उसे दंडस्वरूप हजार रुपए देने होंगे।''

.पंचायत के फैसले के अनुसार जमींदार ने बेलाराम को हजार रुपए दिए। हार मिलने की खुशी में रतनलाल ने भी बेलाराम को इनाम दिया। उन पैसों से बेलाराम ने गाँव में अपनी जमीन खरीद ली और स्वयं खेती करने लगा। अब दोनों पति-पत्नी आराम से रहने लगे।

□

# बदला

चंदोली के महाराजा थे जोरावरसिंह। उनकी वीरता का लोहा शत्रु सैनिक भी मानते थे। युद्ध में उनकी तलवार चलती तो उसकी गति का अनुमान लगाना कठिन हो जाता।

उनका मंत्री अमरदेव ब्राह्मण था। वह वेदों का विद्वान् होने के साथ-साथ वीर योद्धा भी था।

जोरावरसिंह का पुत्र था राजकुमार भैरोंसिंह। अभी वह किशोर ही था कि महाराजा को एक भयंकर युद्ध में उलझना पड़ा। कितने ही युद्ध उन्होंने लड़े थे। उनकी सेना के हौसले कभी नहीं टूटे थे, लेकिन दस दिन की इस घमासान लड़ाई में शत्रु सैनिक एक इंच भी पीछे नहीं हट पा रहे थे।

परेशानी में जोरावरसिंह ने मंत्री अमरदेव से मंत्रणा की। निर्णय हुआ, चंदोली की सेना पूरे जोर से एक साथ शत्रु पर हमला करे। हमला किया भी गया, किंतु परिणाम कुछ न निकला।

जोरावरसिंह का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। अमरदेव और उन्हें शक हुआ, कहीं गुप्तचर उनकी सारी योजनाएँ शत्रु सेना तक तो नहीं पहुँचा रहे हैं ? छानबीन की गई, पर ऐसी कोई बात नहीं निकली।

निराश जोरावरसिंह ने मंत्री से कहा—"मंत्री जी, अब तो युद्ध में शहीद होने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं।"

अमरदेव ने राजा को समझाया "महाराज। निरुत्साहित न हों।

आप न रहे तो राजकुमार को कौन सँभालेगा? रानी तो पहले ही स्वर्ग सिधार चुकी हैं।

"राजकुमार को तुम सँभालोगे।" राजा ने उत्तर दिया।

मंत्री ने कहा—"लेकिन महाराज, मैं तो आपके साथ ही जीना-मरना चाहता हूँ।"

"तुम भी खेत रहोगे तो इस हार का बदला कौन लेगा?" जोरावरसिंह ने मंत्री की बात काट दी। कहा—"तुम राजकुमार को लेकर सुजानगढ़ जाओ। अब मेरी शक्ति समाप्त हो चुकी है। कल निर्णायक युद्ध होगा। अगर मैं जीत गया तो तुम्हें ढूँढ़ लूँगा। अन्यथा समझ लेना, मैं मर चुका हूँ। मेरी मौत का बदला तुम लोगे, मुझे यह वचन दो।"

राजा को वचन दे अमरदेव रात में ही भैरोंसिंह को लेकर सुजानगढ़ की ओर चल पड़ा। तीन दिन बाद वे सुजानगढ़ पहुँचे।

सुजानगढ़ के राजा दिलीप ने उनका स्वागत किया। राजा ने भैरोंसिंह का परिचय महारानी शीतला को देते हुए कहा—"यह चंदोली का राजकुमार है। इसी के साथ हम अपनी पुत्री सरस्वती का विवाह करना चाहते थे। यह यहाँ आ गया, अच्छा हुआ। अब दोनों ही एक-दूसरे को देख-परख लेंगे।"

रानी बहुत प्रसन्न हुई। वह भैरोंसिंह को अपने महल में ले गई।

पाँच दिन बीत गए। छठे दिन अमरदेव ने दिलीप से कहा—"महाराज, हम यहाँ अब एक-दो दिन से अधिक नहीं रुकेंगे। महाराजा जोरावरसिंह अवश्य ही शहीद हो गए हैं अन्यथा अब तक वह जरूर आ जाते।"

राजा दिलीप कुछ सोचकर बोले—"मंत्री जी, आप चिंता न करें



ाँ राजकुमार की तरह ही रहेगा। वह मेरा दामाद बनेगा।
र राज्य का उत्तराधिकारी भी बनेगा। मेरी बेटी सरस्वती

अब बहुत प्रसन्न है। आप चाहें तो आपको भी यहाँ किसी अच्छे पद पर नियुक्त किया जा सकता है।''

अमरदेव कुछ देर सोचता रहा। उसे जोरावरसिंह की हार का बदला लेना था। वह देख रहा था, भैरोंसिह सरस्वती को पाकर अपने पिता तक को भूल चुका था। वह भैरोंसिंह को उसके कर्तव्य की याद दिलाना चाहता था अतः वहीं रुक गया।

एक दिन अमरदेव ने भैरोंसिह को जोरावरसिंह की आखिरी इच्छा बताई। भैरोंसिंह अनिच्छा से बोला—''अब हमें युद्ध से क्या लेना है? चंदोली की बजाय सुजानगढ़ का राज्य तो हमें मिल ही जाएगा।''

यह सुनकर अमरदेव को गहरा धक्का लगा। वीर पिता का पुत्र कैसी कायरतापूर्ण बातें कर रहा था। वह समझ गया, भैरोंसिह को सही मार्ग पर लाने के लिए कुछ करना ही पड़ेगा।

एक दिन अमरदेव ने भैरोंसिंह को शिकार पर चलने को कहा। भैरोंसिह सरस्वती से दूर नहीं जाना चाहता था, पर अमरदेव के बार-बार कहने पर वह तैयार हो गया। अमरदेव ने किसी भी सैनिक को साथ नहीं लिया। वे दोनों शिकार करने चल पड़े।

जंगल के बीच जाकर अमरदेव ने अपनी तलवार निकाल ली और भैरोंसिह से कहा—''राजकुमार! इस रियासत को छोड़कर अभी मेरे साथ चलो, वरना मैं अपने साथ तुम्हें भी खत्म कर दूँगा।''

अमरदेव की इस धमकी से भैरोंसिह डर गया। उसकी इच्छा सुजानगढ़ छोड़ने की नहीं थी, फिर भी अमरदेव के साथ उसे जाना पड़ा। दोनों अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो चंदोली की ओर चल पड़े।

चदोली के जगलो मे अमरदेव ने अपने सैनिको

से मिलकर शीघ्र ही सेना खड़ी कर ली। फिर मौका पाकर एक दिन चंदोली पर धावा भी बोल दिया। भैरोंसिह का मन सरस्वती की ओर लगा था, इसीलिए वह युद्ध में रुचि नहीं ले रहा था। उसकी सेना बराबर हार रही थी।

यह देख अमरदेव फिर परेशान हो उठा—इस बार पुनः हारने का मतलब था, चंदोली को सदा के लिए गुलाम बना देना।

अचानक न जाने कैसे और क्यों अमरदेव युद्ध के मैदान से गायब हो गया। दूसरे दिन राजकुमार भैरोंसिह को समाचार मिला, अमरदेव सुजानगढ़ के राजमहल से सरस्वती को उठाकर ले गया है। वह शत्रु सेना में सम्मिलित हो गया है।

भैरोंसिह क्रोध से पागल हो उठा। उसने सोचा भी नहीं था कि अमरदेव उसके साथ ऐसा धोखा करेगा। अब उसने पक्का निश्चय कर लिया कि वह चंदोली को जीतकर ही दम लेगा और शत्रु के चंगुल से सरस्वती को जरूर छुड़ाएगा। उसमें प्रतिशोध की आग धधक रही थी। सुजानगढ़ के राजा ने भी उसका साथ दिया।

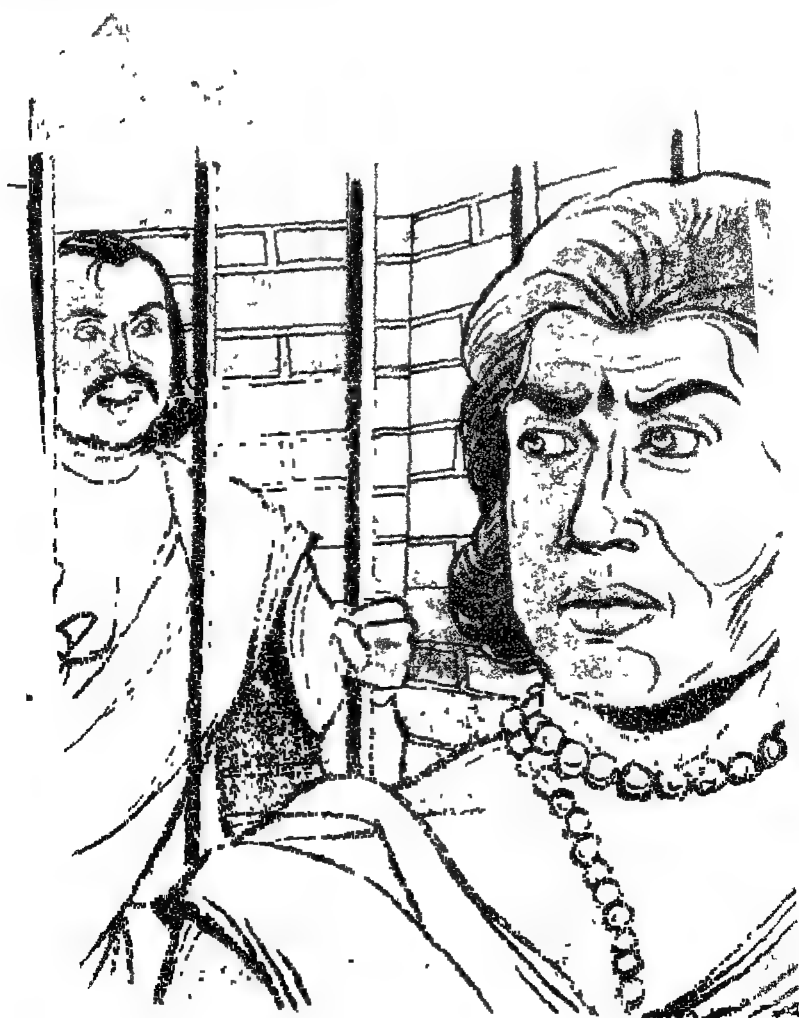
भैरोंसिंह के नेतृत्व में दो रियासतों की सेना ने चंदोली पर आक्रमण किया तो शत्रु सैनिक घबरा उठे। काफी दिन लड़ने के बाद शत्रु सैनिक चंदोली छोड़कर भाग गए।

चंदोली पर भैरोंसिह का अधिकार हो गया। चंदोली की प्रजा महाराजा जोरावरसिंह का बहुत आदर करती थी। उसने उनके पुत्र को धूमधाम से राजगद्दी पर बैठा दिया।

राजा बनते ही भैरोंसिह ने अपने सैनिकों को अमरदेव की तलाश में भेजा। सैनिकों ने चारों ओर ढूँढ़ा, पर न अमरदेव उन्हें कहीं मिला, न सरस्वती। भैरोंसिंह ने घोषणा करा दी—'अगर तीन दिन में अमरदेव नहीं आया तो उसके पूरे परिवार को मौत के घाट उतार दिया जाएगा।'

तीसरे दिन अचानक अमरदेव प्रकट हो गया। भैरों सैनिकों को आदेश दिया—''इस गद्दार को पकड़कर कैद क दो। इसे अन्न-जल कुछ भी न दो। जब तक यह सरस्व पता न बताए, इसे कोल्हू में जोतो।''

सैनिकों ने अमरदेव को फटे चिथड़े पहनाकर जेल मे दिया। तीसरे दिन भैरोंसिंह अमरदेव के पास गया। पूछा— पापात्मा, सरस्वती कहाँ है ?''



"वह अपने घर है महाराज!" अमरदेव ने उत्तर दिया।

भैरोंसिंह ने पुनः कर्कश ध्वनि में कहा—"तुम्हें अब गुलाम बनाकर रखा जाएगा। तुम्हारे पूरे परिवार को भरी सभा में अपमानित किया जाएगा, ताकि भविष्य में कोई ऐसा विश्वासघात न करे।"

अमरदेव कुछ क्षण मौन रहा। फिर सिर झुकाकर बोला—"महाराज! अब मैं अकेला भूखा हूँ अन्यथा मेरे मित्र की पूरी प्रजा भूखी, गुलाम और नंगी रहती तथा अपमानित होती। महाराजा जोरावरसिंह के वचन को पूरा करने के लिए मैंने यह चाल चली थी। राजकुमारी सरस्वती तो अभी भी अपने पिता के घर पर है। मैं देख रहा था, आप उसके प्रेम में अपना कर्तव्य भूलते जा रहे थे। आपको अपने कर्तव्य की याद दिलाने के लिए मैंने यह चाल चली। स्वयं महाराजा दिलीप ने इस योजना में मेरा साथ दिया था।

" आज आप चंदोली के राजा हैं। कल सुजानगढ़ का राज्य मिल जाएगा। तब पूरी प्रजा आपको महाराजा स्वीकार करेगी, नहीं तो आप केवल थोपे गए राजा होते। मौका लगते ही शत्रु सुजानगढ़ को भी आपके हाथों से छीन लेता। " इतना कहकर अमरदेव चुप हो गया।

भैरोंसिंह की आँखें खुल गईं। उसने अमरदेव के पैर पकड़ लिए।

तभी एक सैनिक आया। बोला—"महाराज भैरोंसिंह की जय हो। सुजानगढ़ के महाराजा दिलीप ने आपको बारात सहित बुलाया है।"

□

# घर चलो

समुद्र से थोड़ी दूर मछुआरों का एक छोटा-सा गाँव था—शांतिपुरम्। इस गाँव में कोई भी आदमी मछली नहीं पकड़ता था, फिर भी सभी इसे मछुआरों का गाँव ही कहते थे।

कहा जाता है, बहुत पहले एक महात्मा शांतिपुरम् आए थे। उन्होंने गाँव वालों से कहा था—"यहाँ समुद्र में तापसी नामक पवित्र नदी का जल गिरता है। तुम यहाँ मछलियाँ मत पकड़ना। यदि तुमने मछलियाँ पकड़ीं तो पूरे गाँव पर भयंकर मुसीबतें आएँगी।"

इसके बाद कभी किसी ने समुद्र से मछलियाँ नहीं पकड़ीं।

ये लोग समुद्र में व्यापार के लिए जाने वाली नौकाओं में सामान लादते थे। आने वाली नौकाओं से सामान उतारते। यही इनका मुख्य काम था।

इस गाँव में माणिक नामक एक व्यक्ति रहता था। वह भला और मेहनती था। बोझ उठाने में भी अव्वल। नौकाओं में फटाफट सामान भर देता। काफी पैसे कमा लिए थे उसने। उसके पड़ोस में ही शीतक नामक आलसी आदमी रहता था। वह जब-तब माणिक से पैसे उधार माँगता रहता। माणिक ने भविष्य में उसे उधार देने से मना कर दिया, इसलिए शीतक माणिक से ईर्ष्या करने लगा।

एक दिन भूखे शीतक ने चुपके से समुद्र से मछलियाँ पकड़ लीं।

उसी रात माणिक के घर लड़की पैदा हुई, पर लड़की के जन्म के कुछ देर बाद ही माणिक की पत्नी चल बसी। माणिक ने अपनी लड़की का नाम सुधा रखा।

सुधा को सब गाँव वाले मनहूस समझते थे, क्योंकि उस साल नारियल के पेड़ों पर भी फल नहीं लगे। समुद्र में तूफान आते रहे, अतः व्यापारियों की नौकाएँ भी बहुत कम आईं। लोग बेरोजगार हो गए। भूखों मरने की नौबत आ गई।

शीतक ने लोगों से कहा—"माणिक के घर जो लड़की पैदा हुई है, वह अभागिन है, इसीलिए यह सब हो रहा है।"

लोगों ने मुखिया को सलाह दी—"माणिक और उसकी बेटी को गाँव से निकाल देना चाहिए।"

मुखिया ने माणिक को बुलाकर कहा—"तुम्हारी लड़की मनहूस है। इसी कारण पूरे गाँव को कष्ट उठाना पड़ रहा है। तुम तब तक गाँव से बाहर रहो जब तक पेड़ों पर फल नहीं लग जाते।"

माणिक अपनी बेटी को बहुत चाहता था। लोग उसे मनहूस कहें, यह उसे अच्छा नहीं लगा। पर मुखिया की बात तो माननी ही थी। वह गाँव छोड़कर जंगल में चला गया और एक पेड़ के नीचे झोंपड़ी बना ली। फिर जंगल को साफ कर, कुछ हिस्से में फसल उगा ली। धीरे-धीरे समय बीता। सुधा बड़ी होती चली गई। कई साल बीत गए, पर पेड़ों पर फल नहीं लगे।

एक दिन खेलते-खेलते सुधा एक हरा नारियल उठा लाई। माणिक ने देखा तो खुशी से झूम उठा। इसका मतलब यह था कि फल लग गए। अब वह गाँव जा सकता है। अगले दिन माणिक सुधा को ले गाँव की ओर चल पड़ा। रास्ते में देखा, पेड़ों पर फल लग गए थे।

दोपहर तक वे गाँव पहुँच गए जब शीतक को पता लगा कि



माणिक गाँव लौट आया है तो उसे चिंता हुई। उसने तो ए
माणिक के घर और सामान पर भी कब्जा कर लिया था
सब लौटाना पड़ेगा। तभी उसने सोचा—'कोई ऐसा उपाय
चाहिए, जिससे माणिक वापस जंगल में चला जाए।'

उसने अगले दिन फिर समुद्र से मछलियाँ पकड़ लीं। रात को भारी तूफान आया। पेड़ गिर गए। बारिश रुकने का नाम न ले रही थी।

शीतक मुखिया के पास गया। बोला—"मैं कहता था न, माणिक की लड़की शापग्रस्त है। जैसे ही वह फिर से गाँव में आई है, मुसीबतें शुरू हो गईं । इसे फिर गाँव से निकाल दो।"

मुखिया ने माणिक को बुलवाया। कहा—"तुम आज ही अपनी लड़की को कहीं बाहर भेज दो, वरना पूरा गाँव तबाह हो जाएगा।"

माणिक गिड़गिड़ाया—"ऐसे मौसम में उसे कहाँ छोड़ूँ मुखिया जी?"

मुखिया बोला—"वह बड़ी हो गई है। तुम कहीं उसकी शादी कर दो, ताकि वह गाँव में न रहे।"

शीतक ने ताना दिया—"इस मनहूस से कौन शादी करेगा?"

शीतक की बात माणिक को चुभ गई। बोला—"ठीक है मुखिया जी! चाहे मुझे अपनी बेटी का विवाह किसी पेड़ से करना पड़े, मैं कल ही इसका विवाह कर दूँगा।"

मुखिया और शीतक ने कहा—"यदि कल दिन में कोई युवक इससे विवाह के लिए तैयार न हुआ, तो शाम को इसका विवाह तुम्हें किसी पेड़ से ही करना होगा।"

आसपास के गाँवों में सब लोगों का विश्वास था कि सुधा अभागिन लड़की है, इसलिए कोई भी उससे विवाह को तैयार नहीं हुआ।

गाँव से दूर एक बरगद का पेड़ था। अगले दिन सब मिलकर सुधा को वहाँ ले गए।

मुखिया ने सुधा से कहा—"कोई भी युवक तुमसे शादी करने

को तैयार नहीं है, इसलिए हम तुम्हारा विवाह इस पेड़ से कर रहे हैं। तुम पेड़ के चक्कर लगाकर फेरे लो।''

डरकर सुधा ने चक्कर लगाए।

शादी हो गई । माणिक की आँखों में आँसू आ गए। जो लोग माणिक से सहानुभूति रखते थे, उन्होंने सुधा को एक टोकरी फल और एक दोना भुने चने दिए।

सब लोग वापस गाँव आ गए। उदास सुधा पेड़ के पास बैठ गई।

रात घिर आई थी। जंगल में अकेली सुधा को डर लगा। वह रोने लगी। तभी अचानक पेड़ से एक युवक नीचे उतरा। सुधा ने देखा तो हैरान हो गई।

वह डरकर चीखती, इससे पहले ही युवक ने कहा—''डरने की कोई बात नहीं। मैंने सब बातें सुन ली हैं। मैं सतनगर के व्यापारी सेठ सुदर्शन का लड़का इंद्रजीत हूँ। नौकाओं में सामान भरकर विदेश बेचने गया था। काफी धन कमाकर लौटा। अपने साथियों के साथ घर जा रहा था कि रास्ते में डाकू आ गए। हम डरकर इधर-उधर भागे। मेरे कुछ साथियों को डाकुओं ने पकड़ लिया। मैं छिपते-छिपाते यहाँ तक आ गया।

'' मैंने डरकर सारा धन पेड़ की खोखर में छिपा दिया और स्वयं पेड़ पर चढ़ पत्तों में छिप गया। अब तुम्हें देख निश्चिंत हो गया हूँ। मैं कई दिन से भूखा हूँ, कुछ खाने को दो। ''

सुधा ने टोकरी से फल और दोने से भुने चने निकालकर इंद्रजीत को दिए। इंद्रजीत ने खाया तो जान में जान आई। बोला—''तुमने पेड़ से शादी की है। पेड़ पर मैं था। इसका मतलब यह कि तुमने मेरे संग फेरे लिए हैं। धर्म के अनुसार तुम मेरी पत्नी हो। अब मेरे साथ घर चलो मेरे माता पिता तुम्हें देख बहुत प्रसन्न होंगे '



सुधा मना करती भी तो कैसे ? अगले दिन दोनों सतनगर पहुँचे। सुदर्शन सेठ ने पुत्र को देखा तो खुशी से उसके आँसू निकल आए। सेठानी ने बेटे को गले लगाया। इंद्रजीत ने आपबीती कह सुनाई।

सेठानी बोली—"मेरी बहू मनहूस नहीं, भाग्यवान है। इसके आते ही घर खुशियों से भर गया।"

उस रात फिर समुद्र में तूफान आया। शांतिपुरम् के सब घर ढह गए। सामान बह गया। किसी के पास कुछ नहीं बचा। घबराकर सब लोग एक जगह एकत्र हो गए।

मुखिया ने शीतक से कहा—"तुम कहते थे, मनहूस सुधा के कारण यह सब हो रहा है। सुधा चली गई, अब ऐसा क्यों हुआ ?"

एक बूढ़ा बोला—"लगता है, जरूर किसी ने समुद्र से मछलियाँ पकड़ी हैं। यह उनका शाप है।"

मुखिया ने कहा—"जल्दी ही पता चल जाएगा। हम उसे समुद्र में फेंक देंगे, ताकि मछलियाँ उस व्यक्ति को खा लें। समुद्र शांत हो जाए।"

शीतक को लगा, उसकी चोरी पकड़ी जाएगी। वह रात को ही गाँव छोड़कर भाग गया।

अगले दिन सुधा को पता चला कि शांतिपुरम् में तूफान से सब तबाह हो गया है तो उसे दया आ गई। उसने अपने पति के साथ मिल लोगों की सहायता करने की सोची। वे गाड़ियों में अन्न, वस्त्र आदि भरकर शांतिपुरम् की ओर चल पड़े।

रास्ते में उन्हें शीतक मिला। वह एक पेड़ के नीचे बैठा सर्दी से काँप रहा था। भूख से जान निकली जा रही थी। सुधा को देखते ही उसने पहचान लिया और रो-रोकर गिड़गिड़ाने लगा—"मुझे बचा लो! मैंने मछलियाँ पकड़ी हैं। मुखिया मुझे समुद्र में फेंक देगा।"

सुधा ने उसे खाना दिया, ऊनी शाल ओढ़ाई, फिर अपने साथ बैठाकर उसे शांतिपुरम् ले आए। गाँव आकर सुधा ने सबको पूरी कहानी कह सुनाई। लोगों के सिर शर्म से झुक गए। मुखिया ने सुधा को गले लगा लिया।

शीतक तुरंत मुखिया और माणिक के पैरों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ाते हुए बोला—''सुधा मनहूस नहीं थी। मैंने ही मछलियाँ पकड़कर गाँव को मुसीबत में डाला था। मुझे माफ कर दो।''

माणिक और सुधा के कहने पर मुखिया ने शीतक को क्षमा कर दिया।

सुधा और इंद्रजीत ने सबको वस्त्र और अन्न दिया, तत्पश्चात् उनके मकान भी बनवा दिए। अब समुद्र शांत हो गया था।



# अधूरी रचना

कल्याणी के राजा इंद्रसेन विद्वानों का बहुत आदर करते थे। वह स्वयं भी शास्त्रों के ज्ञाता थे। वह नए-नए ग्रंथों को स्वयं पढ़ते। जो ग्रंथ उन्हें अच्छा लगता उसके लेखक को पुरस्कार भी देते थे।

वहीं हरिदेव नामक एक ब्राह्मण रहता था। परिवार में पत्नी सुजाता और एक पुत्र था गोपाल।

एक बार इंद्रसेन ने हरिदेव को राजमहल में बुलाकर कहा—''विप्रदेव! आप नीतिशास्त्र पर एक ग्रंथ लिखें। ग्रंथ पूरा होने पर आपको पुरस्कारस्वरूप दस सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ दी जाएँगी।''

अगले ही दिन हरिदेव ने पूजा-अर्चना के बाद ग्रंथ-लेखन का कार्य शुरू कर दिया।

अभी पाँच दिन ही बीते थे, एक रात अचानक सुजाता की तबीयत खराब हो गई। हरिदेव ग्रंथ को छोड़कर वैद्य को बुलाने गया, पर जब वह लौटा तो सुजाता मर चुकी थी। हरिदेव को बहुत आघात पहुँचा।

अब गोपाल की देखभाल का भार उस पर ही आ गया। इस कारण लेखन-कार्य भी रुक गया।

एक दिन एक मित्र ने हरिदेव को दूसरा विवाह करने की सलाह दी।

हरिदेव को मित्र की सलाह पसंद आई। उसने अनुराधा नाम

की एक कन्या से विवाह कर लिया। अनुराधा शक्ल-सूरत से सुंदर थी, पर उसका स्वभाव अच्छा न था। वह जब-तब गोपाल को डाँट देती। हरिदेव ने एक-दो बार अनुराधा को समझाया, पर अनुराधा कहती—"अधिक लाड़-प्यार करने से बच्चे बिगड़ जाते हैं, इसलिए मैं समय-समय पर गोपाल को डाँटती रहती हूँ ताकि वह बिगड़ न सके।"

हरिदेव चुप हो गया। वह नीतिशास्त्र के लेखन में व्यस्त रहने लगा। आलसी होने के कारण अनुराधा पति का ध्यान भी नहीं रखती थी।

गोपाल पिता की सेवा करना चाहता था, पर अनुराधा उसे पिता के पास जाने से रोक देती थी। गोपाल मन मसोसकर रह जाता। पर जब सौतेली माँ सो जाती तो वह चुपचाप पिता के पास बैठ जाता और पिता द्वारा लिखे हुए पृष्ठों को पढ़ता।

अभी एक-चौथाई ग्रंथ ही पूरा हुआ था कि हरिदेव भी चल बसा। अब तो गोपाल पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। सौतेली माँ ने उसे घर से निकाल दिया। गोपाल अपने पिता द्वारा लिखे पृष्ठों को साथ ले जाने लगा।

अनुराधा ने वे पृष्ठ भी उससे छीन लिए। वह गोपाल को डाँटती हुई बोली—"मैं ये पृष्ठ लेकर राजमहल में जाऊँगी और राजा से पुरस्कार प्राप्त करूँगी।"

गोपाल उदास होकर चला गया।

एक दिन अनुराधा अधूरे ग्रंथ को लेकर राजमहल पहुँची। उसने राजा से कहा—"महाराज, मेरे पति का देहांत हो गया है। अब यह ग्रंथ पूरा नहीं हो पाएगा। आप अधूरे ग्रंथ पर ही मुझे पुरस्कार की धनराशि देने की कृपा करें।"

इंद्रसेन बोले "देवि। ग्रंथ अधूरा है इसलिए पूरी धनराशि



नहीं दी जा सकती। मैं तुम्हें कुछ धन दक्षिणा में देता हूँ।''

राजा ने अनुराधा को एक सौ स्वर्ण मुद्राएँ दे दीं। पुस्तव पृष्ठ भी उसे लौटा दिए।

उधर विमाता द्वारा घर से निकाल दिए जाने पर गोपाल नदी के किनारे जाकर बैठ गया और लहरों को देखता रहा। मन ही मन कुछ बुदबुदा रहा था।

उसी समय आचार्य अक्षयेन्द्र अपने कुछ शिष्यों के साथ उधर से गुजरे। गोपाल अपने में खोया था।

आचार्य ने गोपाल से पूछा—"बेटा! तुम किससे बातें कर रहे हो?"

"स्वयं से।" गोपाल ने उत्तर दिया।

शिष्य हँस पड़े, पर आचार्य गंभीर हो गए। वह जानते थे कि विद्वान् ही स्वयं से बातें कर सकता है। उन्होंने गोपाल से कहा—"चलो, तुम मेरे साथ चलो।"

गोपाल हँसा। बोला—"जब माँ-बाप ही मुझे अपने साथ नहीं ले जा सके, तो और कौन मुझे अपने साथ ले जा सकता है?"

यह सुन आचार्य ने गोपाल से कहा—"वत्स! मैं एक ग्रंथ की रचना कर रहा हूँ। तुम हमारे आश्रम में चलो। मैं वहाँ तुम्हारी प्रतिभा का पूरा सम्मान करूँगा।"

आचार्य के कहने पर गोपाल उनके साथ आश्रम में आ गया। आचार्य ने उसे वर्षों पढ़ाया। गोपाल विद्वान् हो गया। उसकी प्रतिभा देख सब वाह-वाह कह उठते थे।

एक दिन महाराज इंद्रसेन आचार्य अक्षयेन्द्र के आश्रम में आए। वह आचार्य द्वारा लिखे नए ग्रंथ को पढ़ना चाहते थे। आचार्य ने इंद्रसेन को गोपाल से मिलवाया।

गोपाल की विद्वत्तापूर्ण बातें सुनकर राजा बहुत खुश हुए।

राजा ने पूछा तो उसने कहा—"मैं हरिदेव का पुत्र हूँ।"

राजा ने कहा—"हे युवा विद्वान्! आप नीतिशास्त्र का वह ग्रंथ पूरा करें, जिसे आपके पिता अधूरा ही छोड़कर चल बसे थे।"

गोपाल बोला—"पिता के अधूरे कार्य को पूरा कर मुझे बहुत खुशी होगी। आप पिता के अधूरे ग्रंथ के पृष्ठों को मुझे विमाता से दिला दें।"

राजा ने उसे आश्वस्त किया और महल की र

राजा ने सैनिक भेजकर अनुराधा के घर से ग्रंथ लिए और उन्हें गोपाल को सौंपते हुए कहा—" पूरा करें। मैं आपको पुरस्कार में दस सहस्र स्वर्ण



गोपाल ने ग्रंथ लिखना प्रारंभ कर दिया। चार वर्ष के कठोर परिश्रम के बाद ग्रंथ पूरा हुआ।

गोपाल ने ग्रंथ आचार्य को दिखाया। आचार्य ने ग्रंथ को पढ़ा। बोले—''बेटा! तुम्हारी रचना अनमोल और श्रेष्ठ है। महाराजा इंद्रसेन इसे पढ़कर अवश्य प्रसन्न होंगे।''

अगले दिन आचार्य और गोपाल नीति-ग्रंथ को ले राजदरबार में पहुँचे। दरबारियों के बीच राजा ने उनका स्वागत किया।

आचार्य ने ग्रंथ के बारे में विस्तार से वहाँ सबको बताया। इंद्रसेन ग्रंथ को देख बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मंत्री से कहा—''गोपाल को दस की बजाय ग्यारह सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ दे दो। मैं चाहता हूँ कि गोपाल आगे भी हमारे लिए ऐसी ही पुस्तकें लिखे।''

जब अनुराधा को यह पता चला तो वह दौड़ी-दौड़ी राजदरबार में आई और गोपाल से अपने किए अपराध की क्षमा माँगने लगी।

गोपाल ने कहा—''आप मेरी माँ हैं। मुझे आशीर्वाद दीजिए। आपकी डाँट-फटकार से ही मैं यह ग्रंथ पूरा कर सका हूँ।''

यह सुन अनुराधा ने बेटे को गले से लगाया। उधर सब गोपाल की जय-जयकार करने लगे।

□

# बेटे का पैर

सोनभद्र गाँव में जयनंद नाम का एक बहेलिया रहता था। उसके परिवार में उसकी पत्नी राधा और एक पुत्र भी था—हरिदास। हरिदास बचपन से ही अपंग था। जयनंद ने बहुत-से वैद्य-हकीमों को दिखाया, पर सबका एक ही उत्तर था—"इस बीमारी का इलाज बहुत महँगा है। सिर्फ राजा-महाराजा ही इतनी महँगी दवा ले सकते हैं। तुम्हारे पास इतना धन कहाँ है?"

ऐसा उत्तर सुन जयनंद मन मसोसकर रह जाता। वह सुबह-सुबह जाल लेकर जंगल में चला जाता। जहाँ कहीं पक्षी नजर आते, वहीं जाल लगा देता। फिर दाना बिखेरकर पेड़ की ओट में बैठ जाता। पक्षी दाना खाने के लिए जाल पर आ बैठते और जाल में फँस जाते।

शाम को पकड़े गए पक्षियों को लेकर जयनंद घर आ जाता। उसकी पत्नी राधा पक्षियों को एक बड़े पिंजरे में बंद कर देती। राधा की नाचने-गाने में रुचि थी। वह पक्षियों को मनुष्य जैसा बोलना सिखाती थी। उसने कई पक्षियों को गाना भी सिखा दिया। बुलबुल और मैना जैसे चतुर पक्षियों को तो उसने नाचना भी सिखाया।

पक्षी बोलने एवं नाचने में तेज हो जाते तो जयनंद उन्हें शहर में बेच आता। इस काम में महीनों लग जाते, तब जाकर कहीं कुछ रुपये मिलते थे।

एक दिन जयनंद ने जंगल में जाल बिछा रखा था। दाने देख एक रंग-बिरंगे पंखों वाला छोटा पक्षी जाल पर आ बैठा। ज्यों ही उसने दाना खाने की कोशिश की, वह जाल में उलझ गया। उसने बार-बार पंख फड़फड़ाकर निकलने की कोशिश की। उसके पैरों और पंखों से खून बहने लगा। थोड़ी देर बाद वह अचेत हो गया।

जयनंद पक्षी के रंग-रूप को देखकर मुग्ध हो गया था। उसने सोचा—'ऐसा पक्षी मैंने पहली बार देखा है। अवश्य ही यह दुर्लभ पक्षी है। इसे बेचकर बहुत-सा धन मिलेगा। तब तो मैं हरिदास का इलाज भी करा सकूँगा।'

जयनंद खुश होता हुआ घर आ गया। आते ही उसने सुंदर पक्षी राधा को सौंप दिया। पक्षी देख राधा भी हैरान हुई। उसने पक्षी के पंखों और पैरों पर मरहम लगा दिया। इस काम में हरिदास ने भी उसकी मदद की। थोड़ी देर बाद पक्षी को होश आ गया। फिर पक्षी ने मनुष्य की भाषा में पूछा—"मैं कहाँ हूँ?"

उसे बोलते देख राधा और हरिदास के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने सोचा—'हम महीनों पक्षियों के साथ माथापच्ची करते हैं, तब जाकर वे कुछ शब्द बोल पाते हैं। पर यह तो पहले से ही बोलना जानता है।'

हरिदास बोला—"तुम हमारे घर में हो। मेरे पिताजी तुम्हें जंगल से पकड़कर लाए हैं।"

इतना सुनकर पक्षी चुप हो गया।

हरिदास ने पूछा—"तुम कहाँ रहते थे? हमने ऐसा पक्षी पहली बार देखा है।"

पक्षी बोला—"मेरा नाम श्रीभद्र है। मैं पक्षी नहीं, अपितु शापित मुनिकुमार हूँ। मेरे माता-पिता वेणुवन में आश्रम में रहते हैं।"

"तुम पक्षी कैसे बन गए?" जयनंद ने पूछा

श्रीभद्र बोला—"एक बार मेरे माता-पिता
हुए थे। एक दिन ऋषि नागभद्र हमारे आश्रम में
" ऋषि ने मुझसे पूछा—'तुम्हारे पिता कहाँ
समय पक्षियों के साथ खेल में मस्त था। अतः मैं



उत्तर देना भूल गया। उन्हें बहुत क्रोध आ गया। वह बोले—'तुम्हें पक्षियों के साथ खेलना इतना अच्छा लगता है, तो तुम भी पक्षी बन जाओ।'

"नागभद्र को क्रोधित देख मेरा ध्यान टूटा। शाप सुनकर मेरे होश उड़ गए। मैंने गिड़गिड़ाते हुए कहा—'महाराज! आप मुझे क्षमा कर दें।' इतनी देर में दूसरे विद्यार्थी भी वहाँ आ गए थे। उन्होंने भी उनसे मेरा अपराध क्षमा करने के लिए प्रार्थना की।

"मुझे रोते देख नागभद्र को दया आ गई। वह बोले—'मैं तुम्हें बालक समझकर क्षमा कर रहा हूँ। पर तुम्हें तब तक पक्षी बनकर रहना ही होगा, जब तक तुम्हारे माता-पिता तीर्थयात्रा से नहीं लौट आते। जब वे तुम्हारे ऊपर तीर्थों का जल छिड़क देंगे तब तुम अपने असली रूप में आ जाओगे, पर शाप समाप्त होने की अवधि तक तुम पक्षी और मनुष्यों की भाषा बोल व समझ सकोगे।'

"मैं तब से अपने माता-पिता की प्रतीक्षा में घूम रहा हूँ। आज मुझे बहुत भूख लगी थी। दाने बिखरे देख मैं अपने को रोक न सका और तुम्हारे जाल में फँस गया।

"यदि तुम मुझे छोड़ दो तो तुम्हारी बड़ी कृपा होगी। मेरे माता-पिता मुझे आश्रम में नहीं पाएँगे तो उन्हें बहुत कष्ट होगा।"

जयनंद बोला—"पक्षी! तुम बहुत सुंदर हो। लोग तुम्हें ऊँची कीमत में खरीद लेंगे। मुझे अपने पुत्र के इलाज के लिए धन चाहिए। मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता।"

श्रीभद्र ने कहा—"क्या हुआ है तुम्हारे पुत्र को?"

जयनंद ने उत्तर दिया—"बचपन में ही इसके दोनों पैर बेकार हो गए थे। अब यह चल भी नहीं सकता। इसके इलाज में बहुत पैसा लगेगा।"

श्रीभद्र ने हरिदास के पैरों की ओर देखा। फिर बोला—"मैं तुम्हारे बेटे के पैरों का इलाज कर सकता हूँ।"

"तुम कैसे करोगे?" राधा ने आश्चर्य से पूछा।

श्रीभद्र बोला—"मेरे पिता आयुर्वेद के आचार्य हैं। जब वे छात्रों को आयुर्वेद पढ़ाते थे तो मैं भी उनकी बातें सुनता रहता था। मुझे छोटी उम्र में ही दवाओं के विषय में ज्ञान हो गया।"

पक्षी श्रीभद्र की बातें सुन जयनंद खुश होकर बोला—"अगर तुम मेरे बेटे को ठीक कर दोगे तो मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा।"

श्रीभद्र ने कहा—"हमारे आश्रम में हजारों प्रकार के पेड़-पौधे उगे हुए हैं। मैं उन्हीं पेड़-पौधों से दवा बनाऊँगा। उसे लगाने पर तुम्हारा बेटा ठीक हो जाएगा। दवा बनाने के लिए पत्ते एवं छाल मैं अकेला नहीं ला सकता। इसलिए आप मेरे साथ पिंजरे में बंद इन पक्षियों को भी छोड़ दें, ताकि मैं पक्षियों की मदद से उन पेड़ों से दवा की सामग्री ला सकूँ।"

जयनंद बोला—"मैं तुम्हारी बातों पर कैसे यकीन करूँ? हो सकता है, तुम वापस ही न आओ।"

श्रीभद्र बोला—"मैं मुनिकुमार हूँ। अगर झूठ बोलूँगा तो शाप से मुक्ति कैसे मिलेगी?"

पक्षियों ने कहा—"तुम हम पर विश्वास करो। हम जरूर लौट आएँगे।"

जयनंद ने श्रीभद्र की बात पर यकीन कर पक्षियों को छोड़ दिया। वे उड़ गए।

दो दिन बीत गए। पक्षी लौटकर नहीं आए। जयनंद ने राधा से कहा—"लगता है, वे नहीं आएँगे। लाओ, मुझे जाल दो। मैं जंगल से नए पक्षी पकड़कर लाता हूँ।"

र बोला—''पिताजी! थोड़ी देर और इंतजार कर लो। ़हता है, वे जरूर आएँगे।''

ां कर ही रहे थे कि बाहर पक्षियों के पंख फड़फड़ाने ा सुनाई दी।



जयनंद और राधा ने बाहर आकर देखा। बहुत-से पक्षी घर की मुँडेर पर बैठे थे। सबकी चोंच में छाल और पत्ते थे।

राधा ने हँसकर उनका स्वागत किया। उसने उन्हें भीगी दाल और मीठे फल खिलाए।

श्रीभद्र उड़कर हरिदास के पास जा बैठा। उसने जयनंद से पत्ते कूटने को कहा।

श्रीभद्र के बताए अनुसार जयनंद ने पत्तों और छाल से दवा बनाई। तीन-चार लेप के बाद हरिदास पूरी तरह ठीक हो गया।

राधा और जयनंद की खुशी का तो ठिकाना न रहा। उन्होंने सभी पक्षियों को आजाद कर दिया। पक्षी खुशी-खुशी आकाश में उड़ गए।

हरिदास बोला—''पिताजी! आकाश में उड़ते आजाद पक्षियों को पिंजरे में डालकर रखना मुझे अच्छा नहीं लगता। अब मैं ठीक हो गया हूँ। हम कोई और मेहनत का काम करेंगे।''

''ठीक है बेटे! भविष्य में हम खेती करेंगे और पेड़ उगाएँगे।'' इतना कहकर जयनंद ने जाल फेंक दिया।

श्रीभद्र अपने आश्रम लौट गया। उसके माता-पिता भी तीर्थ-यात्रा से लौट आए थे। पूरी कहानी सुन उन्होंने तीर्थों का जल श्रीभद्र पर छिड़क दिया। वह पुनः मुनिकुमार के अपने पुराने रूप में लौट आया।

□

# पिता के पास

जामनगर के राजा थे रणधीर सिह। उनके राज्य में प्रजा बहुत सुखी थी। किसी को कोई दुःख न था। सभी राजा को बहुत चाहते थे।

जामनगर की सेना बहुत बड़ी नहीं थी। फिर भी पड़ोसी राज्य हमला करने से डरते थे। कारण था—सेना में मौजूद एक से बढ़कर एक वीर सैनिक। उनमें पद्मसिह नामक सैनिक भी था—बहुत वीर और वफादार। रणधीर सिंह उसे बहुत पसंद करते थे। वह अस्त्र-शस्त्र चलाने में बहुत निपुण था। धीरे-धीरे महाराज का उस पर इतना विश्वास जमा कि वे उसे अपने निकट रखने लगे। महाराज जब भी कहीं जाते, उसे अपने साथ ले जाते।

राज्य के सेनापति वीरभद्र को यह पसंद नहीं था। उसे लगता था, कहीं बाद में महाराज पद्मसिंह को ही सेनापति न बना दें। यही डर का कारण था। महाराज वीरभद्र को पसंद नहीं करते थे। गुप्तचरों ने उन्हें बता रखा था कि वीरभद्र राज्य में विद्रोह करवाना चाहता है।

वास्तव में वीरभद्र रणधीर सिंह को मारकर स्वयं राजा बनना चाहता था। इसीलिए वह सोचता था कि राज्य की सेना पर उसका नियंत्रण हो जाए। इस उद्देश्य से वीरभद्र अपने विश्वस्त लोगों को चुपचाप सेना में शामिल कर रहा था। अंदर ही अंदर वीरभद्र पड़ोसी राजा रूपसिह से भी बात कर रहा था।

एक दिन मंत्री विजय सिंह महाराज के पास आए। उन्होंने कहा—"महाराज! सेना की स्थिति ठीक नहीं है। गुप्त सूत्रों से पता चला है कि पड़ोसी राजा रूपसिंह हम पर आक्रमण की तैयारी कर रहा है। हमारे सेनापति उनसे मिले हुए हैं।"

काफी देर तक राजा मंत्री से मंत्रणा करते रहे। वह सेनापति को लेकर चिंतित थे।

"एँक व्यक्ति है, जिसे हम मोर्चे पर भेज सकते हैं।" महाराज ने कहा।

"किसे महाराज?" मंत्री ने पूछा।

"पद्मसिह को। वह देशभक्त है।" कहते हुए महाराज ने युद्ध की तैयारी का आदेश दे दिया।

वीरभद्र को यह सब पता चला तो वह बहुत नाराज हुआ। उसकी योजना विफल होने जा रही थी। उसने सोचा था कि वह मोर्चे पर जानबूझकर हार जाएगा ताकि राज्य के एक भाग पर रूपसिह का कब्जा हो जाए। इसी सोच-विचार में डूबा वह महाराज के पास जा पहुँचा।

"महाराज! राज्य के गुप्तचरों की सूचना है कि पद्मसिह पड़ोसी राजा से मिला हुआ है। वह हमें धोखा देगा।" वीरभद्र ने महाराज के कान भरने का प्रयास किया।

"नहीं, इस युद्ध में मैंने पद्मसिह को ही भेजने का निश्चय किया है। असल में मैं उसे परखना चाहता हूँ। पता चल जाएगा कि पद्मसिंह का चरित्र क्या है।" महाराज ने अपना निर्णय सुना दिया।

वीरभद्र चुपचाप वापस चला गया, परंतु उसे चैन नहीं था। उसे डर था कि कहीं पद्मसिंह ने युद्ध जीत लिया तो सारी योजना गडबडा जाएगी। वीरभद्र ने एक चाल चली। उसने युद्ध के लिए

जाने वाली सेना में अपने कुछ खास आदमियों के दस्ते को भी शामिल कर दिया।

युद्ध के मैदान में पद्मसिह और उसके सैनिक पूरी वीरता से लड़े, परंतु सेनापति के विशेष दस्ते ने धोखा दे दिया। वे ऐन मौके पर शत्रु सेना के साथ जा मिले। सारी गुप्त सूचनाएँ शत्रु राजा को बता दीं। फिर तो युद्ध का पासा ही पलट गया। पद्मसिंह हार गया। उसे गिरफ्तार कर लिया गया। बाकी सैनिक मारे गए या कैद कर लिए गए।

वीरभद्र के सैनिक युद्ध-क्षेत्र से वापस आए। उन्होंने रणधीर सिंह को पूरी बात बताई—"महाराज! पद्मसिंह गद्दार निकला। हम जीतने ही वाले थे कि वह शत्रु पक्ष से जा मिला।"

जल्दी ही पद्मसिंह की गद्दारी की बात सारे राज्य में फैल गई। सभी पद्मसिह से नफरत करने लगे। बात पद्मसिह के गाँव तक पहुँची। उसकी पत्नी और बेटी विभा को अफवाहों पर विश्वास न हुआ।

अगले ही दिन दोनों राजा के पास पहुँचीं। रणधीर सिंह ने विभा से कहा—"तुम्हारा पिता गद्दार निकला। उसने मुझे धोखा दिया है।"

"नहीं, मेरे पिता गद्दार नहीं हो सकते। मैं साबित करूँगी। वह जान दे सकते हैं, परंतु राज्य से गद्दारी नहीं कर सकते।" विभा ने दृढ़ता से अपनी बात कह दी और फिर रो पड़ी। उसका मन बहुत दुखी था।

दोनों माँ-बेटी राजमहल से बाहर आईं। विभा ने माँ से कहा—"माँ, तुम गाँव जाओ। मैं पिताजी से मिलने जाऊँगी। मैं सच्चाई जानकर ही रहूँगी।"

माँ ने उसे बहुत समझाया, पर विभा ने सच जानने का पक्का निश्चय कर लिया था

माँ को गाँव भेजकर विभा सीमा की तरफ च
ार सैनिक तैनात थे। कड़ा पहरा था। कोई उस पार
ा। विभा रात होने का इंतजार करने लगी। अँधेरे
ुए वह पड़ोसी राज्य में जा पहुँची। उसने बहुत
ठाया था।



किनारे पर एक पत्थर था। उससे विभा को चं
तु फिर भी हिम्मत करके वह आगे चल पड़ी।
ाक झोंपड़ी थी। पास पहुँचकर उसने दरवाजा खट
ढ़िया बाहर आई।

"तुम कौन हो बेटी? तुम्हें चोट कैसे लगी?" बुढ़िया ने पूछा।

अपनत्व पाकर विभा रो पड़ी। वह भूल गई कि शत्रु राज्य में है। उसने पूरी बात कह सुनाई। फिर बोली—"चाहे कुछ भी हो जाए मैं सच्चाई जानकर रहूँगी।"

बुढ़िया चुप हो गई। थोड़ी देर बाद बोली—"सुना तो हमने भी है, परंतु पद्मसिंह साजिश का शिकार हुआ है।"

"कैसी साजिश, बताओ न माँ?" विभा ने उत्सुकता से पूछा।

"पूरी बात तो मुझे भी पता नहीं। मेरा बेटा कारागार में तैनात है। वही लौटकर कुछ-कुछ बताता रहता है।" बुढ़िया ने उत्तर दिया।

"माँ, क्या मेरे पिता भी वहाँ कैद हैं?" विभा ने पूछा।

"मैं नहीं जानती। परंतु चिंता न कर। मेरा बेटा आता ही होगा। उसे जरूर पता होगा। वह सब कुछ बता देगा।" बुढ़िया ने जवाब दिया। फिर बोली—"हम सभी अत्याचारी राजा रूपसिंह से तंग हैं। हमारे पुराने राजा रणधीर सिंह बहुत अच्छे हैं। काश, वह फिर इस इलाके को जीत लें।"

तभी बुढ़िया का लड़का रामसिंह काम से वापस लौटा। वह विभा को देखकर चौंक गया।

बुढ़िया बोली—"बेटा, यह विभा है। जामनगर से अपने पिता को ढूँढ़ने आई है। हमें इसकी मदद करनी है।"

"कैसी मदद?" रामसिंह ने आश्चर्य से पूछा।

"बेटा! इसके पिता का नाम पद्मसिंह है। इसके राजा पद्मसिंह को गद्दार मानते हैं। यह उन्हें ढूँढ़ने आई है। अब तू ही इसकी सहायता कर।" बुढ़िया ने रामसिंह से कहा।

"पद्मसिंह मेरे यहाँ कैदी हैं। प्रतिदिन उन पर बहुत अत्याचार किया जाता है " रामसिंह ने कहा

"परंतु लोग तो कहते हैं, मेरे पिता रूपसिंह से मिल गए हैं।" कहते हुए विभा की आँखों में आँसू आ गए।

"यह झूठ है। सब गड़बड़ तुम्हारे सेनापति की है। यह उसी की साजिश है। उसी के विशेष दस्ते ने गद्दारी की थी।" रामसिंह ने गुस्से से कहा।

"परंतु यह आरोप कैसे सिद्ध होगा?" विभा ने दुखी होकर पूछा।

"एक उपाय है। आज से चार रोज बाद तुम्हारा सेनापति रूपसिंह के सेनापति से मिलने सीमा पार आ रहा है। यदि महाराज रणधीर सिंह उसे रँगे हाथों पकड़ लें तो सच सामने आ जाएगा।" रामसिंह ने तरीका बताया।

विभा ने देर करना उचित न समझा। अपनी चोट की भी परवाह न की। बुढ़िया से आशीर्वाद लेकर तुरंत लौट पड़ी। नदी पार करके वह राजधानी जा पहुँची।

महाराज ने पहले तो उससे मिलने से मना कर दिया, परंतु फिर मंत्री के कहने पर विभा से मिले। विभा की हालत देखकर वह दंग रह गए। विभा ने रोते हुए सारी बातें उन्हें बताईं। फिर बोली—"महाराज, मेरे पिता निर्दोष हैं। बस, आप सेनापति पर नजर रखिए। सच्चाई अवश्य सामने आ जाएगी।"

"ठीक है। यदि तुम्हारी बात सच निकली तो पद्मसिंह को छुड़ाने मैं सेना लेकर स्वयं जाऊँगा।" रणधीर सिंह बोले।

महाराज ने अपने विश्वस्त गुप्तचरों को सेनापति के पीछे लगा दिया। वीरभद्र सीमा पार शत्रु सेनापति से मिलने गया तो रणधीर सिंह को पता चल गया। उसके वहाँ आते ही महाराज के आदेश पर उसे गिरफ्तार कर लिया गया। महाराज ने स्वयं पूछताछ की



सच-सच उगल दिया। अपने साथियों के नाम भी
.को तुरंत·गिरफ्तार कर लिया गया।

रणधीर सिह ने सेना को तैयार होने का आदेश दिया। फिर स्वयं नेतृत्व करते हुए दुश्मनों पर टूट पड़े। रूपसिंह को हमला होने की उम्मीद नहीं थी, अतः मुकाबला न कर पाया। रणधीर सिंह ने उसे मौत के घाट उतार दिया।

रणधीर सिंह कारागार पहुँचे। घायल और पस्त पद्मसिह को देखकर उनकी आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने अपने हाथों से उसे मुक्त किया।

अगले दिन दरबार लगा। विभा अपनी माँ के साथ मौजूद थी। वह अपने पिता के गले लगकर रो पड़ी। दरबार में इस दृश्य को देखकर सभी की आँखों में आँसू आ गए। महाराज ने वीरभद्र को मृत्युदंड दिया। कहा—"विभा ने अपने साहस से हमें सिखा दिया कि कानों सुनी पर भरोसा नहीं करना चाहिए। आज से पद्मसिह हमारा नया सेनापति होगा।"

सारी सभा महाराज की जय-जयकार कर उठी। विभा अपने पिता को खोया हुआ गौरव वापस पाते देख गर्व से भर उठी। उसने सिर उठाकर सबकी तरफ देखा मानो कह रही हो—'देखा, मैं न कहती थी, मेरे पिता गद्दार नहीं हैं, सच्चे देशभक्त हैं।'



# एक से पाँच

किसी गाँव में सोहनलाल नामक एक जमींदार रहता था। उसके पास काफी जमीन-जायदाद थी, फिर भी उसकी इच्छा रहती थी कि गाँव के अन्य किसानों की जमीन भी हड़प लूँ।

सोहनलाल के पड़ोस में कर्मचंद नाम का एक गरीब किसान रहता था। उसके पास सिर्फ थोड़ी-सी जमीन थी। उसका खेत जमींदार के खेत के पास ही था। सोहनलाल कर्मचंद की जमीन हड़पने की ताक में था।

एक बार बारिश के दिनों में गाँव में भूचाल आ गया। कई मकान गिर गए। कर्मचंद का मकान कच्चा था। भूचाल के झटके से उसका मकान गिर गया। मकान गिरते ही उसका सब सामान पानी में बह गया।

जमींदार का मकान पक्का और मजबूत था, इसलिए उसका कम नुकसान हुआ। पर गोदाम में रखी अनाज की एक बोरी खराब हो गई।

बुआई का मौसम आ गया। मकान ढहने से किसानों के पास बोने को अनाज नहीं बचा था। वे सब जमींदार के पास गए। बोले—"महाशय! आप हमें बीज के लिए अनाज दे दें। फसल पकने पर हम आपका उधार चुका देंगे।"

जमींदार ऐसे मौके की तलाश में ही रहता था। उसने किसानों से कहा—"ठीक है मैं तुम्हें एक-एक बोरी अनाज दे दूँगा पर

वापसी में तुम्हें पाँच गुना अनाज देना होगा। जो मुझे इतना अनाज वापस नहीं करेगा, मैं उसकी जमीन पर कब्जा कर लूँगा।''

सोहनलाल की बात मानने के अलावा किसानों के पास और कोई चारा नहीं था। उन्होंने उससे बीज के लिए अनाज ले लिया।

कर्मचंद भी जमींदार के पास अनाज लेने पहुँचा। जमींदार ने सोचा—'कर्मचंद की जमीन लेने का यही सबसे बढ़िया अवसर है।' उसे ध्यान आया कि गोदाम में एक बोरी अनाज खराब हो चुका है। क्यों न वही अनाज कर्मचंद को दे दूँ? इससे न तो फसल उगेगी और न ही यह पाँच बोरी अनाज लौटा पाएगा। तब मुझे इसकी जमीन पर कब्जा करने में दिक्कत नहीं होगी।

यह सोचकर उसने कर्मचंद को अनाज की वह खराब बोरी दे दी।

कर्मचंद ने मेहनत करके बुआई के लिए भूमि तैयार की। उसने वह अनाज खेत में बो दिया।

समय बीता। जमींदार और दूसरे किसानों के खेतों में फसल उगने लगी, पर कर्मचंद का खेत अब भी वीरान पड़ा था। उसने अपने खेत को देखा तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ। वह जमींदार के पास पहुँचा। बोला—''महाशय! मेरे खेत में तो एक भी दाना नहीं उगा। लगता है, अनाज खराब था।''

कर्मचंद की बात सुनते ही सोहनलाल क्रोध से लाल-पीला हो उठा। बोला—''सारे किसान इसी गोदाम से बोरी ले गए हैं। उनमें से किसी ने ऐसी शिकायत नहीं की। अब कोई बहाना नहीं चलेगा। यदि तुमने मुझे पाँच बोरी अनाज नहीं लौटाया तो मैं तुमसे जमीन छीन लूँगा।''



पंच के पास गया, पर सरपंच भी क्या कर सकता
ा—"समझौते की शर्त तो तुम्हें माननी ही होगी।
ो जमींदार को पाँच बोरी अनाज लाकर दो।"

कर्मचंद अपने घर लौट आया।

कर्मचंद के खेत में एक बरगद का पेड़ था। उस पर बहुत-से पक्षी रहते थे। कर्मचंद का खेत तो वीरान था। पेड़ पर रहने वाले पक्षियों को अपने भोजन के लिए आसपास के खेतों से दाने चुगने पड़ते।

एक दिन सोहनलाल अपने खेतों में आया। उसने वहाँ इतने पक्षियों को दाना चुगते देखा तो उसे बहुत गुस्सा आया। उसने नौकरों से कहा—''पक्षी फसल को काफी हानि पहुँचा रहे हैं। तुम ड्रम इत्यादि बजाते हुए खेतों में घूमो।''

नौकर शोर मचाकर पक्षियों को उड़ाने लगे। वे पक्षियों को अपने पेड़ों पर भी नहीं बैठने देते थे, इसलिए आसपास के सब पक्षी कर्मचंद के पेड़ पर आकर बैठने लगे।

कर्मचंद के खेत में फसल थी ही नहीं। उसे पक्षी उड़ाने की जरूरत भी नहीं थी। इस खाली समय में वह अपने मकान की मरम्मत करने लगा।

मौका मिलते ही पक्षी उड़कर जमींदार के पौधों पर जा बैठते। नौकर ड्रम बजाते उधर से गुजरते, पक्षी डरकर पौधों से बालियाँ तोड़ते और कर्मचंद के पेड़ पर जा बैठते।

पेड़ पर दाना खाते समय कुछ बालियाँ नीचे गिर जाती थीं। धीरे-धीरे पेड़ के नीचे काफी बालियाँ इकट्ठी हो गईं।

एक दिन कर्मचंद मकान की छत के लिए लकड़ियाँ लेने खेत में गया। उसने देखा, पेड़ के नीचे ढेर सारी बालियाँ पड़ी हैं। उसने बालियाँ इकट्ठी कर लीं। वह उन्हें घर ले आया और उनमें से अनाज निकाल लिया। वह हैरान था, क्योंकि एक ही दिन में उसके पास काफी अनाज जमा हो गया था।

ाद दिन में मकान बनाता और शाम को पेड़ के
डी करता।



कुछ दिन बाद जमींदार और अन्य किसानों ने अपनी-अपनी फसल काट ली। वे खलिहानों से अनाज अपने घर ले गए। कर्मचंद ने भी जैसे-तैसे बालियों से काफी अनाज बटोर लिया था।

एक दिन जमींदार सरपंच और अन्य लोगों को लेकर कर्मचंद के घर पहुँचा। बोला—"कर्मचंद, अब तुम मुझे पाँच बोरी अनाज दो या अपनी जमीन।"

कर्मचंद तो पहले से ही तैयार था। उसने जमींदार के सामने पाँच बोरी अनाज रख दिया।

जमींदार ने देखा तो दंग रह गया। बोला—"इतना अनाज कहाँ से आया? जरूर तुमने मेरे खेतों से फसल चुराई है।"

कर्मचंद ने सरपंच को पूरा हाल कह सुनाया।

सच्चाई जानने के लिए वे सब पेड़ के नीचे गए। उन्होंने देखा, वहाँ अनाज के कुछ दाने बिखरे थे। सरपंच ने जमींदार और उसके लोगों से कहा—"तुम लोगों ने पक्षियों को अपने खेतों में बैठने नहीं दिया, पर कर्मचंद ने उन्हें अपने खेत में बैठने दिया। इससे पक्षियों ने ढेर सारा अनाज दे दिया।"

यह सुन जमींदार खिसियाकर वहाँ से चला गया। कर्मचंद बहुत प्रसन्न था।



# दो बहनें

राजा विक्रमसिह बूढ़े हो चले थे। उन्होंने राजकुमार नरोत्तम को सिहासन सौंप भगवान् का भजन करने की सोची, परंतु नरोत्तम की योग्यता पर उन्हें भरोसा नहीं था। वह जल्दी ही दूसरों के बहकावे में आ जाता था। राजा को भय था कि कहीं सामंत या मंत्री नरोत्तम को बहकाकर राजपाट न छीन लें।

नरोत्तम की दो बहनें थीं। वे समझदार एवं सुंदर थीं। एक बार तो राजा विक्रमसिह ने सिहासन बड़ी राजकुमारी को सौंपने का मन बना लिया था, क्योंकि वह राज-कार्य में निपुण तथा बुद्धिमान थी। परंतु मंत्री तथा सेनापति ने कहा—''महाराज! गद्दी पर हक तो राजकुमार का है। लड़की तो पराया धन होती है। उसके विवाह के बाद इस राज्य का क्या होगा?''

अतः न चाहते हुए भी विक्रमसिंह ने राजसिंहासन राजकुमार नरोत्तम को सौंप दिया। मंत्री और सेनापति जानते थे कि राजकुमारी के सम्राज्ञी बनने पर उन्हें कुछ नहीं मिलेगा, जबकि राजकुमार नरोत्तम को बहकाकर मनचाहा धन लूटा जा सकता है। नरोत्तम को राजा बना दिया गया।

कुछ दिन बाद विक्रमसिंह का निधन हो गया। अब तो मंत्री और सेनापति हर समय नरोत्तम को घेरे रहते।

एक दिन अरब देश का एक सौदागर घोड़े लेकर नगर में हाजिर हुआ' वह कई राजाओं से मिल चुका था परंतु कोई भी उसके

घोड़े खरीदने को तैयार नहीं हुआ। कारण यह था कि घोड़े कमजोर होते जा रहे थे।

घोड़ों को यहाँ की जलवायु रास नहीं आ रही थी। कुछ घोड़े बीमार भी हो गए थे। सौदागर बहुत परेशान था। अरब वापस जाए भी कैसे? सारे पैसे खर्च हो गए थे। घोड़ों को अच्छा चारा कहाँ से दे? उसने सोचा—'इन्हें आधी कीमत में बेच देना चाहिए।' मंत्री को यह पता चला तो वह सौदागर से मिला। कहा—"मैं तुम्हारे घोड़े पूरी कीमत में बिकवा दूँगा, पर तुम्हें आधे पैसे मुझे देने होंगे।"

सौदागर तो पहले ही आधे दामों पर घोड़े बेचने को तैयार था। उसने हाँ कर दी। मंत्री सेनापति से मिला और कहा—"तुम राजा से कहना, सेना के लिए घोड़ों की जरूरत है। तुम्हें भी हिस्सा मिल जाएगा।"

मंत्री एवं सेनापति ने मिलकर राजा से कहा—"महाराज! हमारी सीमाओं पर खतरा बढ़ रहा है। रियासत में भी विद्रोह हो सकता है। इसलिए आवश्यक है कि सेना को पूरी तरह तैयार रखा जाए।"

नरोत्तम बोला—"तुम सेना को खूब शक्तिशाली बनाओ।"

मंत्री ने कहा—"महाराज, कुछ अरबी घोड़े मिल रहे हैं। आप कहें तो सेना के लिए खरीद लें?"

"हाँ-हाँ, आज ही ले लो।" नरोत्तम ने उत्तर दिया।

मंत्री तथा सेनापति की दाल गल गई। उन्होंने बीमार और कमजोर घोड़े आधी कीमत में खरीद लिए, पर खजाने से पूरे पैसे वसूल किए।

राजकुमारियों को पता चला तो वे दौड़ी-दौड़ी नरोत्तम के पास आईं, परंतु नरोत्तम ने यह कहते हुए झिड़क दिया—"तुम्हें राज-काज का क्या ज्ञान?"

वे मन मसोसकर रह गईं।

उस साल वर्षा न होने से फसल भी अच्छी नहीं हुई। लेकिन मंत्री का आदेश था कि किसानों से पूरा कर वसूल किया जाए, अतः जनता विद्रोह पर उतारू हो गई।

नरोत्तम ने यह सुना तो गुस्से से उफन पड़ा। बोला— विद्रोह करने वाले लोगों को मौत के घाट उतार दो।''

यह आदेश मिलते ही नगर में हाहाकार मच गया।

कुछ दिन बाद मंत्री एक संन्यासी को लेकर महल में आया। उसने संन्यासी की तरफ इशारा करते हुए कहा—''महाराज, यह आपके राज्य को अमर बनाने के लिए यज्ञ करेंगे। इससे आपके दुश्मनों का नाश होगा और नगर में खुशहाली भी बढ़ेगी।''

यह सुन नरोत्तम बहुत खुश हुआ। बोला—''कल से यज्ञ शुरू कर दो ताकि हमारा सिंहासन सुरक्षित रहे।''

बड़ी राजकुमारी को एक उपाय सूझा। उसने छोटी बहन को एकांत में कुछ समझाया। उसकी बातें सुनकर छोटी राजकुमारी उससे सहमत हो गई।

एक दिन नरोत्तम बाग में पहुँचा। उसने देखा—बाग में एक बहुत सुंदर पेड़ उगा है। उस पर लगे रंग-बिरंगे फूलों को देख उसका मन झूम उठा—'यह तो बहुत सुंदर पेड़ है। मैं प्रतिदिन सुबह यहाँ घूमने आऊँगा और अपने हाथों से इस पेड़ को पानी दूँगा।'

अगली प्रातः नरोत्तम बाग में पेड़ के पास गया। उसने देखा, दोनों बहनों ने पेड़ को चारों ओर बाड़ से घेर दिया था।

नरोत्तम ने इसका कारण पूछा तो बड़ी राजकुमारी बोली—''हम चाहती हैं, यह पेड़ सदा सुरक्षित रहे।''

अब नरोत्तम प्रतिदिन पेड़ को पानी देने बाग में आता। कुछ ही दिन बीते थे कि अचानक पेड़ मुरझाने लगा। उसके पत्ते पीले पड़ गए। फूल भी मुरझाकर झड़ गए। नरोत्तम को बहुत दुःख हुआ। उसने राजकुमारियों से पूछा—"यह सब कैसे हुआ?"

बड़ी राजकुमारी बोली—"बाड़ लगाते समय खुदाई के कारण हो सकता है, इसकी जड़ें कट गई हों।"

नरोत्तम की नजर पेड़ की जड़ों की तरफ गई। सचमुच वे कट गई थीं। वह बोला—"जड़ें कट जाने से अब यह नष्ट हो जाएगा।"

छोटी राजकुमारी बोली—"भैया! क्या यह बाड़ और आपके हाथों द्वारा दिया गया पानी इसकी रक्षा नहीं कर सकते?"

नरोत्तम ने कहा—"जब जड़ें ही कट गईं तो यह सब व्यर्थ है।"

बड़ी राजकुमारी ने कहा—"भैया, जब जड़ों से कटकर एक पेड़ जिंदा नहीं रह सकता तो हमारा राज्य सुरक्षित कैसे रहेगा?"

"तुम कहना क्या चाहती हो?" नरोत्तम ने विस्मय से पूछा।

बड़ी राजकुमारी बोली—"राज्य की जड़ प्रजा होती है। वही राज्य को भोजन-पानी प्रदान करती है। आज जब प्रजा दुखी एवं निराश है तो भला हमारा राज्य हरा-भरा कैसे रह सकता है?"

नरोत्तम ने कहा—"प्रजा ने विद्रोह किया है। हम उसे सजा देंगे।"

राजकुमारी ने समझाया—"मंत्री और सेनापति ने मिलकर प्रजा पर खर्च होने वाले धन को अपने घरों में जमा कर लिया है। यदि आप चाहते हैं कि हमारा राज्य सुरक्षित रहे तो कृपा करके आप प्रजा का मन जीतें।"



नरोत्तम ने सुना तो उसकी आँखें खुल गईं। उसने उप सेनापति से कहा—"मंत्री और सेनापति को बंदी बनाकर मेरे सामने पेश करो। मैं अभी नगर का दौरा कर प्रजा पर खर्च किए गए धन की जाँच करूँगा।"

मंत्री और सेनापति ने सुना तो भागने की कोशिश की, पर सिपाहियों ने उन्हें कैद कर लिया। नकली महात्मा भी पकड़ा गया। उसने बताया—"मैं साधु नहीं, पड़ोसी राजा का गुप्तचर हूँ। मंत्री ने ही मुझे यहाँ बुलाया था।"

अब तो सारा भेद खुल गया। तीनों को कैद में डालकर नरोत्तम नगर के दौरे पर निकला। उसने लोगों को आश्वासन दिया—"शीघ्र ही खजाने का धन प्रजा की भलाई पर खर्च किया जाएगा।"

प्रजा का असंतोष मिट गया। लोग राजा की जय-जयकार करने लगे। वे मंत्री और सेनापति को दोषी बता रहे थे।

राजकुमारियाँ अब संतुष्ट थीं।

नरोत्तम ने कुलपुरोहित से कहा—"आप मेरी बहनों के लिए योग्य वरों की तलाश करें।" फिर उसने बहनों से कहा—"पराए घर जाने से पहले इस राज्य के लिए योग्य मंत्री और सेनापति का चयन तुम्हें ही करना होगा।"

बड़ी राजकुमारी बोली—"नगर से बाहर वर्षों से छात्रों को पढ़ाने वाले आचार्य सत्यदेव को मंत्री बना दिया जाए, क्योंकि वह छात्रों को देशभक्ति का पाठ पढ़ाते हैं।"

छोटी राजकुमारी बोली—"वफादार उप सेनापति को ही सेनापति बना दिया जाए, क्योंकि इसने ही हमें मंत्री और सेनापति की सारी गुप्त सूचनाएँ दी थीं।"

□

# बज उठे घुँघरू

दूर तक फैले रेगिस्तान में कहीं-कहीं पानी के पोखर थे। इन्हीं के आसपास चालीस-पचास घरों के छोटे-छोटे गाँव बसे हुए थे। ऐसे ही एक गाँव में सेठ जौहरीमल का मकान था। उनके बाप-दादा कभी इस मकान में रहते थे। जौहरीमल गाँव छोड़कर शहर में जा बसे, क्योंकि वहाँ उनका व्यापार काफी बढ़ गया था। अब वह विदेशों में सामान ले जाते, उसे बेचकर धन कमाते, वापसी में वहाँ से माल भरकर इधर बेच देते।

सेठ जी पूरे साल व्यापार के काम में ही उलझे रहते, पर उन्होंने एक नियम बना रखा था। कार्तिक मास में अपने गाँव अवश्य आते थे। इस महीने में दीपावली का त्योहार होता है। जौहरीमल अपने पैतृक घर में आकर लक्ष्मी जी की पूजा करते थे।

इस प्रकार हर साल वह एक माह के लिए गाँव आ जाते। गाँव वाले उनके आगमन पर बहुत खुश होते। सेठ जी थे भी बहुत उदार। मंदिर की मरम्मत करवाते। पोखर की मिट्टी हटवाते। गाँव के गरीब लोगों को अन्न-वस्त्र आदि दान देते थे।

एक बार व्यापार का कामकाज निबटाने के बाद जौहरीमल गाँव के लिए चले। उनके साथ उनकी पत्नी शांति, पुत्र श्यामलाल और दो नौकर भी थे। सेठ जी अपने ऊँट पर सवार होकर सबसे आगे चल रहे थे। श्यामलाल अपनी माँ के साथ एक ऊँट पर बैठा था। दो ऊँटों पर सामान लदा था, जिन्हें नौकर हाँक रहे थे।

वे अभी लगभग बीस कोस ही चल पाए थे कि अचानक तेज आँधी चलने लगी। उन्होंने अपने ऊँट बैठा दिए और उनकी ओट लेकर खुद भी बैठ गए। काफी समय बीत गया। आँधी रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। देखते-देखते संध्या घिर आई। फिर कुछ देर बाद आँधी भी रुक गई। रात को चलना ठीक न जान उन्होंने वहीं रुकने का निश्चय किया। जौहरीमल ने देखा, कुछ दूरी पर पेड़ों का एक झुरमुट-सा है। वहाँ अवश्य पानी भी होगा, यही सोचकर वे सब वहाँ पहुँच गए।

उन्होंने सामान उतारकर ऊँटों को पेड़ों से बाँध दिया। फिर भोजन आदि का प्रबंध करने लगे।

अचानक रेत के एक टीले के पीछे से दस-पंद्रह आदमी निकलकर आ गए। उनके हाथों में हथियार थे। उन्हें देखते ही जौहरीमल समझ गए कि ये डाकू हैं। विरोध करने से कोई लाभ नहीं था।

डाकू सरदार गरजकर बोला—"तुम्हारे पास जो भी सामान है, हमारे हवाले कर दो।"

शांति ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—"भाइयो! यह सारा सामान हम लक्ष्मी-पूजा के लिए गाँव ले जा रहे हैं। पूजा के बाद इसे गाँव के गरीबों को दान करना है। तुम इसे छीन लोगे तो बेचारे गरीबों का दिल टूट जाएगा।"

डाकू सरदार हँसने लगा। बोला—"हमने यह झुरमुट इसीलिए चुना है कि राह चलते मुसाफिर यहाँ रुकेंगे। हम उन्हें लूट लेंगे। अब देर मत करो, वरना हम तुम्हें मार डालेंगे।"

उनकी बात सुनकर जौहरीमल और शांति चुप हो गए, परंतु नौकरों ने विरोध करना चाहा। सरदार डाकू को गुस्सा आ गया। उसने अपने लोगों से कहा—"इन सबको पेड़ों से बाँध दो। खुद

ही भूखे-प्यासे मर जाएँगे। सारा सामान इन्हीं के ऊँटों पर लाद लो। अच्छा है, हमें ऊँट भी मिल गए।''

बाकी डाकुओं ने वैसा ही किया। जौहरीमल, शांति, श्यामलाल और नौकरों को उन्होंने पेड़ों से बाँध दिया, फिर सारा सामान ऊँटों पर लादकर रफूचक्कर हो गए।

श्यामलाल का भूख के मारे बुरा हाल था, परंतु उसके माता-पिता भी लाचार थे। पेड़ों से बँधे होने के कारण वे एक-दूसरे को देखकर केवल आँसू ही बहा सकते थे।

रोते-रोते श्यामलाल को नींद आ गई। वह पेड़ के सहारे सिर टिकाकर सो गया। थोड़ी देर बाद दूसरे लोगों की भी आँख लग गई।

अचानक घुँघरूओं की हलकी-सी आवाज सुनकर श्यामलाल की नींद खुली। उसके माता-पिता और नौकर अभी भी सो रहे थे। श्यामलाल ने देखा, पेड़ों की ओट में कोई नाच रहा है। वह एकटक देखता रहा।

'अरे! ये तो एक नहीं, कई हैं।' श्यामलाल मन ही मन बुदबुदा उठा।

घुँघरूओं का स्वर धीरे-धीरे उसके समीप आता जा रहा था। पास आने पर श्यामलाल ने देखा—उनके तो पंख भी हैं। फिर तो जरूर ये परियाँ ही हैं। उसने आँखें बंद कर लीं, ताकि परियाँ यह न समझें कि वह जाग रहा है, पर अधमुँदी आँखों से वह उन्हें देखता रहा।

चाँदनी रात में परियाँ झुरमुटों के आसपास नृत्य करने लगीं। अचानक एक नन्ही परी का ध्यान उस पेड़ की तरफ गया, जहाँ जौहरीमल बँधे हुए थे। उसने अपनी सखी से कहा—''यहाँ तो किसी आदमी को पेड से बाँध रखा है।''

उसकी सहेली ने दूसरे पेड़ की तरफ देखा। वह भी बोल पड़ी—''उधर देखो, एक स्त्री भी बँधी हुई है।''

इतनी देर में दूसरी परियाँ भी वहाँ आ गईं। नन्ही परी ने उन्हें भी बताया। बस, फिर तो परियों ने सबको देख लिया।

रानी परी ने कहा—''ये तो मनुष्य हैं। हमें इनसे क्या! चलो, हम उधर चलकर अपना नृत्य करें और नाचें-गाएँ।''

रानी की बात सुन नन्ही परी उदास हो गई।

रानी ने पूछा—''अरी, तुझे क्या हो गया?''

नन्ही परी बोली—''रानी माँ, जरूर ये लोग मुसीबत में हैं। हमें इन्हें खोल देना चाहिए। उस प्यारे बच्चे को देखो। बेचारा कैसे ऊँघ रहा है।''

रानी ने कहा—''खुलने पर ये आदमी हमें नुकसान पहुँचा सकते हैं। अगर इन्होंने हमारे पंखों को छू लिया तो वे घायल हो जाएँगे।''

नन्ही परी की आँखों में आँसू आ गए। रानी से उसके आँसू न देखे गए। बोली—''अच्छा बेटी, रो मत। हम धीरे-धीरे इनको खोल देंगे। इन्हें पता भी नहीं चलेगा। फिर इनके जागने से पहले ही हम यहाँ से दूर चली जाएँगी।''

''ठीक है।'' नन्ही परी ने खुश होकर कहा।

सब परियों ने मिलकर उनकी रस्सियाँ खोल दीं। नन्ही परी श्यामलाल की रस्सी खोलने लगी।

जौहरीमल, शांति और नौकर अभी भी सो रहे थे। श्यामलाल सोने का बहाना किए हुए था। नन्ही परी का स्पर्श उसे बहुत अच्छा लग रहा था। जी में आया, उससे बात करे, परंतु वह चुप रहा। उसे भय था, कहीं उसके बोलते ही परियाँ उड़ न जाएँ।

सबकी रस्सियाँ खुल जाने पर रानी परी बोली—''चलो, अब हमने अपना कार्य कर दिया।''



जाने लगीं। श्यामलाल ने चुपके से नन्ही परी को शुक्रिय

! तुम तो जाग रहे थे!" नन्ही परी छिटककर दूर खड़ी

''हाँ, जाग रहा था। तुम बहुत अच्छी हो। मैं तुम्हें कभी भुला नहीं पाऊँगा।''

नन्ही परी कुछ कहती, इससे पहले ही रानी माँ ने उसे अपने करीब बुला लिया। देखते-देखते सब परियाँ आसमान में उड़ गईं।

श्यामलाल ने अपने माता-पिता को जगाया। वे चौंककर उठे। जौहरीमल ने हैरान होकर पूछा—''हमारी रस्सियाँ किसने खोल दीं?''

श्यामलाल बोला—''बाबूजी, अभी कुछ देर पहले यहाँ परियाँ आई थीं। उन्होंने हमारी रस्सियाँ खोली हैं।''

शांति और जौहरीमल को विश्वास नहीं हो रहा था।

थोड़ी देर बाद सुबह का उजाला फैलने लगा। सेठ जी ने कहा—''चलो, अब पैदल ही गाँव चलें। ढोने को हमारे पास कोई सामान भी नहीं बचा है।''

वे सब गाँव की ओर चल पड़े। कुछ दूर चलने पर उन्हें ग्रामवासी उधर ही आते दिखाई दिए। उन लोगों के हाथों में लाठियाँ और भाले थे।

थोड़ी देर में वे सब उनके निकट पहुँच गए। सेठ जी को देखते ही मुखिया ने प्रणाम किया। पूछा—''आप कुशल से तो हैं?''

जौहरीमल को आश्चर्य हुआ—'इन्हें हमारी मुसीबत का पता कैसे चला?'

उन्होंने मुखिया से पूछा—''तुम्हें कैसे पता लगा कि हम संकट में थे?''

मुखिया ने कहा—''रात को सामान से लदे कई ऊँट भागते हुए आए और आपके घर के पास खड़े हो गए। हमने समझा, आप आए हैं। पर जब आप कहीं दिखाई नहीं दिए तो मैंने गाँव





कहा कि सेठ जी के ऊँट उनका घर जानते हैं। जरूर उन
संकट आया होगा, इसीलिए ये दौड़कर यहाँ आ खड़े
।

रीमल ने रात वाली पूरी घटना उन्हें सुनाई। सब हैरान रह

मुखिया बोला—"सेठ जी, आपके ऊँट वफादार निकले। डाकुओं से नकेल की रस्सी छुड़ाकर सीधे घर भाग आए।"

नन्हा श्यामलाल एक तरफ खड़ा सोच रहा था—'शायद इसमें भी परियों का ही हाथ है।'

घर आकर जौहरीमल ने ऊँटों की पीठ थपथपाई। फिर उन्होंने धूमधाम से लक्ष्मी-पूजा की।



# गहरी चाल

पंचदेश के महाराजा नरसिह का अतुल वैभव देखकर पड़ोसी राजा अभयसिह का मन ललचा गया। वह महाराजा की इकलौती पुत्री राजकुमारी स्वरूपा को रानी बनाना चाहता था। उसकी इच्छा थी, यदि स्वरूपा का विवाह उससे हो जाए तो महाराजा की मृत्यु के पश्चात् उनका राज्य भी उसे मिल जाएगा। लेकिन राजकुमारी उसके लालचीपन को जानती थी। उसने विवाह के लिए मना कर दिया।

अभयसिंह को यह बहुत बुरा लगा। वह युद्ध भी नहीं कर सकता था, क्योंकि महाराजा नरसिंह की शक्ति बहुत ज्यादा थी।

अभयसिंह के दरबार में एक भाट कवि रहता था। उसने पंच-देश को जीतने और राजकुमारी को पाने के लिए कवि से सलाह ली।

कवि धूर्त एवं लालची था। उसने कहा—"महाराज, किसी भी राष्ट्र को जीतने के लिए उसकी प्रजा में फूट डालना जरूरी है। इसके लिए वहाँ के युवकों को गुमराह करना चाहिए। यदि बच्चों के संस्कारों को बुराई की ओर मोड़ दें तो वे अपने देश के लिए समस्या पैदा कर सकते हैं। आप जीतने पर मुझे उस प्रदेश का आधा भाग दें तो मैं यह काम कर सकता हूँ।"

अभयसिंह ने हाँ कर दी। कवि ने कहा—"अब आप पाँच सौ गुप्तचरों को प्रशिक्षित करा दें, जो धीरे-धीरे पंचदेश में घुस

जाएँ। कोई साधु वेश में सत्संग चलाए, कोई पाठशाला में जाकर पढ़ाए। इसी बहाने हम अपना काम शुरू कर देंगे।''

अगले दिन वह कवि भेष बदलकर महाराजा नरसिह के दरबार में हाजिर हुआ। अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से उसने महाराजा का मन जीत लिया। नरसिंह का महामंत्री रुद्रदेव विद्वान् एवं ईमानदार था। वह सच्चाई कह देता था, इसलिए कई बार महाराजा उससे नाराज हो जाते थे। कवि ने रुद्रदेव की इस कमी का लाभ उठाया। उन दोनों में फूट डालकर एक वर्ष में ही वह नरसिह का विश्वास-पात्र बन गया। अब राजा जो भी नया कार्य करते, उससे सलाह लेकर करते। रुद्रदेव ने राजा को कई बार समझाया। कहा—''किसी अपरिचित पर इतनी जल्दी विश्वास नहीं करना चाहिए।'' लेकिन राजा पर असर नहीं हुआ।

धीरे-धीरे शत्रु के गुप्तचर पंचदेश में आ विभिन्न दिशाओं में फैल गए। अब वे युवकों को गलत बातें बताकर राजा के विरुद्ध भड़काने लगे। युवकों में व्यसन भी तेजी से बढ़ने लगे।

दो-तीन वर्ष बाद ही कवि की चाल रंग लाई। शीघ्र ही विद्रोह की ज्वाला भड़कने लगी।

रियासत में लगातार कई वर्षों की अशांति ने महाराजा की नींद हराम कर दी। वह समझ नहीं पा रहे थे, प्रजा को अचानक क्या हो गया? कभी दक्षिण में विद्रोह हो जाता, तो कभी पश्चिम में। अब राजकुमारी भी उदास रहने लगी।

राजा ने महामंत्री रुद्रदेव से विचार-विमर्श किया। महामंत्री स्वयं भी इससे काफी चिंतित था। बोला—''महाराज, हो न हो, इसमें किसी शत्रु राजा का हाथ है।''

राजा ने पूछा—''सही बात कैसे पता चले?''

महामंत्री और महाराजा आपस में बातें कर ही रहे थे, तभी एक सैनिक आया। बोला—"महाराज, राज्य के उत्तरी भाग में बगावत हो गई है। अनेक युवक विद्रोह करते हुए संपत्ति को नुकसान पहुँचा रहे हैं।"

सैनिक की बात सुन राजा ने कवि को बुलाया। उसकी राय जाननी चाही। कवि ने आते ही कहा—"महाराज, प्रजा की यह हिम्मत कि विद्रोह करे! अभी सेना भेजकर उसे कुचल डालो।"

महाराजा के पास भी इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। गुस्से में काँपते हुए उन्होंने सेनापति को आदेश दिया—"हमने बहुत धैर्य रखा। अब जहाँ भी विद्रोह होता है, उसे कुचल दिया जाए।"

सेनापति सिर झुकाकर चला गया।

कवि के जाने पर महामंत्री रुद्रदेव ने कहा—"महाराज, इस नरसंहार में निरपराध व्यक्ति मारे जाएँगे। विद्रोही तो दंगा करके छिप जाते हैं। निर्दोष व्यक्तियों को ही इसकी सजा भुगतनी पड़ती है। आप ऐसा न करें। हम इसका उपाय सोचेंगे।"

राजा ने कहा—"लेकिन उपाय सोचते-सोचते कई वर्ष बीत गए। यदि आरंभ में ही कवि का सुझाव मान लेते तो यह नौबत न आती।"

रुद्रदेव ने महाराजा के कान में एक बात कही। महाराजा कुछ क्षण सोचते रहे। फिर स्वीकृति में गर्दन हिला दी। सेना न भेजने का आदेश भी दे दिया।

विद्रोह को दबाने के लिए रुद्रदेव को उत्तरी राज्य भेजा गया। कुछ घंटों बाद ही दरबार में खबर पहुँची, विद्रोहियों ने महामंत्री की हत्या कर दी है और उनका शव नदी में फेंक दिया है। सारे दरबार में सन्नाटा छा गया।

अब उस कवि को अपनी चाल पूरी होती नजर आई। वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सोचा—'अब चार-पाँच महीनों में ही पंचदेश में गृहयुद्ध भड़क उठेगा। अभयसिंह को संदेश भेज देना चाहिए कि वह युद्ध के लिए तैयार रहे।'

मगर हुआ कुछ और ही। दो महीने में ही उत्तरी भाग में विद्रोह शांत हो गया। कवि हैरान था, यह सब कैसे हुआ? उसने पुनः विद्रोह भड़काने के लिए उत्तरी भाग में जाने की योजना बनाई।

एक दिन राजा के सैनिक कई गुप्तचरों को पकड़कर राजदरबार में ले आए। उनके हाथ-पैर जंजीरों से बँधे थे। सभी रो-रोकर अपनी जान की भीख माँगने लगे। उन सबके पीछे रुद्रदेव दरबार में हाजिर हो गया।

दरबारी चकित रह गए। रुद्रदेव तो मर चुका था! यह पुनः जीवित कैसे हुआ? कवि ने सभी बंदियों को पहचान लिया।

रुद्रदेव ने महाराजा को नमस्कार किया। फिर हँसते हुए बोला—"महाराज, अब प्रजा में विद्रोह नहीं होगा। ये थे वे व्यक्ति, जो हमारे युवकों को गुमराह कर रहे थे।"

सभी बंदी राजा से हाथ जोड़कर कहने लगे—"महाराज, इसी दुष्ट कवि ने हमें लालच दे आपके राज्य में भेजा था।"

डर से काँपते कवि को सैनिकों ने तुरंत गिरफ्तार कर लिया।

रुद्रदेव ने कहा—"महाराज, यदि मैं उस दिन आपके कान में यह चाल नहीं समझाता और अपने मरने की घोषणा नहीं करवाता तो इस कवि के व्यक्ति मेरे पीछे भी लगे थे। वे गुप्तचरों को पहले ही सचेत कर देते। फिर उन्हें पकड़ना कठिन था। इसीलिए मैं उनकी आँख बचाकर निकल गया था। मैं उत्तरी भाग में न जाकर पश्चिम में गया। मुझे शक था, उत्तर में विद्रोह कराकर



दिशा में गया होगा। मैंने वहाँ छिपकर सभी तरह के
.जर रखी। एक दिन कई व्यक्तियों के उग्र भाषण सुने।
( संदेह होने लगा। कई दिन तक उनके पीछे लगा रहा।
ाने पर मेरे सैनिकों ने उन्हें धर दबोचा फिर तो सुराग

हाथ लग गया। ये दुष्ट झूठी एवं गलत बातें बताकर छात्र युवकों को गुमराह कर रहे थे।

" इन्हें गिरफ्तार करने के बाद मैंने विद्रोही युवकों को सही स्थिति समझाई। उन्हें अपनी भूल का पता चला, इसीलिए विद्रोह शांत हुआ। "

सभी गुप्तचरों को कारावास में डाल राजा ने उस कवि को सूली पर चढ़ा दिया।

□



# शैतान की झील

मरुभूमि में महासवी नामक एक आदमी रहता था। वह अपने काफिले का मुखिया था। उसके काफिले में बहुत-से आदमी, औरतें और बच्चे थे। ये लोग घूमते रहते और जहाँ कहीं पानी मिलता, कुछ दिन वहीं रुक जाते थे।

एक बार भयंकर अकाल पड़ा। पानी मिलना दुर्लभ हो गया। घूमते हुए उन्होंने एक जगह हरियाली देखी। वहाँ एक छोटी-सी झील थी। उसके चारों ओर खजूर के पेड़ उगे थे।

महासवी ने अपने ऊँट एवं भेड़-बकरियाँ वहाँ रोक दीं और तम्बू लगा लिए। रात को बहुत जोर की आँधी आई। कई तम्बू उखड़ गए। भेड़-बकरियाँ इधर-उधर भटक गईं। खजूर के पेड़ गिरने से कई बकरियाँ भी उनके नीचे दबकर मर गईं।

महासवी ने यह सब देखा तो उसे बहुत दुःख हुआ। उसे अपने ऊँट से बहुत प्यार था। खजूर का पेड़ गिरने से उसकी एक टाँग टूट गई थी। वह चल नहीं सकता था। महासवी को ठंड लगने से ज्वर हो गया था। उसने अपने काफिले के लोगों को भटकी हुई भेड़-बकरियाँ ढूँढ़ने भेज दिया और स्वयं बीमार ऊँट के पास पड़ी खजूर की चटाई पर लेट गया।

अचानक उसे कोई आता दिखाई दिया। महासवी उसे एकटक देखता रहा। पास आने पर उसने देखा, वह एक लड़की थी। उसने उजले कपड़े पहन रखे थे उसने आते ही महासवी से कहा

"बाबा, यह शैतान का बाग है। तुम यहाँ से चले जाओ। वह बाहर गया हुआ है। यदि उसने आकर देख लिया तो वह तुमको हानि पहुँचा सकता है। वह यहाँ किसी को रुकने नहीं देता।"

महासवी ने पूछा—"तुम कौन हो?"

लड़की बोली—"मैं इस स्थान के स्वामी की बेटी हूँ। मेरे पिता की मृत्यु के बाद शैतान ने मुझे अपनी दासी बना लिया है। यह हमारे जानवर भी हड़प गया। कोई भूला-भटका यात्री यहाँ आ ज़ाता है तो शैतान उसे पीटता है।"

महासवी ने कहा—"बेटी, मेरा ऊँट बीमार है। मुझे भी बुखार है। हमारी बकरियाँ खो गई हैं। ऐसे में हम आगे कैसे जाएँ?"

लड़की ने कहा—"उसके आने से पहले बहुत तेज आँधियाँ चलती हैं। आप यदि चल नहीं सकते तो मैं आपको एक नीला पत्थर देती हूँ। जिसके गले में नीला पत्थर बँधा हो, उसे शैतान कुछ नहीं कहता। आप काफिले के बाकी लोगों को यहाँ से दूर भेज दो।" और नीला पत्थर देकर लड़की चली गई।

महासवी ने काफिले के लोगों से कहा—"तुम यहाँ से कुछ दूर उस पहाड़ी पर चले जाओ। मैं बीमार ऊँट को अकेला नहीं छोड़ सकता। मैं रात-भर यहीं रहूँगा।"

लोगों ने काफी कहा, पर महासवी नहीं माना। काफिले के बाकी लोग पहाड़ी पर चले गए। महासवी वहीं ऊँट के पास बैठा रहा।

रात हुई। अचानक बहुत जोर की आँधी आई। थोड़ी देर बाद एक भारी-भरकम शैतान वहाँ आ गया। उसने झील में छलाँग लगाई और काफी देर तक पानी पीता रहा। जब वह झील से बाहर निकला तो उसने देखा कि एक बूढ़ा आदमी खजूर के पेड़ के



। शैतान गुस्से से आगबबूला हो उठा। फिर महासवी
र बोला—"तुम यहाँ क्यों आए हो?"

महासवी ने कहा—"सारे रेगिस्तान में और कहीं पानी नहीं, इसीलिए भूखे-प्यासे हम यहाँ चले आए।"

शैतान बोला—"मैं तुम्हारे ऊँट को खाऊँगा।" ऐसा कहकर वह ऊँट की ओर बढ़ा, पर ठिठक गया। ऊँट के गले में नीला पत्थर जो बँधा था।

शैतान ने पूछा—"तुमने इसके गले में नीला पत्थर क्यों बाँधा है?"

महासवी ने सच-सच बता दिया। कहा—"मुझे अपनी जान से भी अधिक अपने ऊँट की जान प्यारी है, इसीलिए नीला पत्थर अपने गले में न बाँध इसके गले में बाँधा है।"

शैतान बोला—"मैं तुम्हारी सच्ची दोस्ती से बहुत खुश हूँ। अब मैं नीला पत्थर देने वाली लड़की को सजा दूँगा।"

महासवी ने कहा—"इसमें उस बेचारी का कोई दोष नहीं है। यदि सजा देनी है तो मुझे दो। अपराध मेरा है।"

महासवी की न्यायप्रिय बातें सुनकर शैतान बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा—"महासवी, तुम अच्छे आदमी हो। यदि तुम अकेले यहाँ रहना चाहो तो मैं तुम्हें इजाजत दे दूँगा।"

महासवी बोला—"अनुमति देने के लिए आपको धन्यवाद। मेरे काफिले के लोग भूखे-प्यासे मरें और मैं यहाँ सुख से रहूँ, यह मुझे शोभा नहीं देगा।"

थोड़ी देर में शैतान चला गया। महासवी ऊँट के पास बैठा रहा। रात को अँधेरे में रोशनी फैलने लगी। महासवी ने देखा, फिर वही लड़की आई थी।

आते ही लड़की ने कहा—"बाबा, तुम बहुत भले आदमी हो। मैंने तुम्हारी सारी बातें सुन ली हैं। मुझे तुम जैसे नेक इंसान की

तलाश थी।'' इतना कहकर उसने कपड़े में लिपटी एक पुस्तक महासवी की तरफ बढ़ाई।

महासवी ने पूछा—''यह क्या है?''

लड़की बोली—''यह जादुई पुस्तक है। जिसके पास भी यह रहेगी, वहाँ सुख-समृद्धि होगी। मरते समय मेरे पिता ने मुझे दी थी। इसी के कारण अकाल के समय भी यहाँ हरियाली है।''

पुस्तक देकर लड़की चली गई।

महासवी ने किताब खोली तो उसे वह बहुत अच्छी लगी। वह उसे गा-गाकर पढ़ता रहा। शाम को शैतान आया। उसने महासवी के बोल सुने तो उस पर मुग्ध हो गया और रात-भर महासवी से किताब की बातें सुनता रहा।

शैतान बोला—''यह किताब बहुत रोचक है।''

महासवी ने उसे समझाया—''यह जादुई है। जिसके पास भी रहेगी, वहाँ सुख-समृद्धि रहेगी। मैं चाहता हूँ, इसे तुम ले जाओ।''

महासवी की उदारता देख शैतान चकित रह गया। उसने सोचा—'महासवी कितना उदार आदमी है। समृद्धि देने वाली किताब मुझे दे रहा है। एक मैं हूँ, जो प्यासे लोगों को पानी भी नहीं पीने देता।' शैतान लज्जा अनुभव कर रहा था। उसने महासवी से कहा—''मैं तुम्हें कुछ देना चाहता हूँ। तुम कुछ भी माँग लो।''

महासवी बोला—''मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुम उस लड़की को छोड़ दो। उसकी भूमि उसे वापस कर दो।''

शैतान ने कहा—''ठीक है। अब मैं किसी को तंग नहीं करूँगा। आज से लड़की ही इस झील की मालकिन होगी।''

इतने में लड़की भी आ गई। वह भी हैरान थी कि महासवी ने शैतान को वश में कैसे कर लिया !

शैतान ने लड़की की भूमि उसे सौंप दी और उसे आजाद भी कर दिया।

आजाद होते ही लड़की बोली—"बाबा, अब तुम्हें यहाँ से जाने की जरूरत नहीं। तुम पूरे काफिले के साथ यहाँ आराम से रहो।"

महासवी प्रसन्न था। उसका ऊँट ठीक हो गया। वह पहाड़ी पर जाकर काफिले के लोगों को बुला लाया। अब वे सब चैन से रहने लगे।



# जंगल की ओर

हाथियों के झुंड में नन्हे दंतक के जन्म से खुशी की लहर दौड़ गई। उसकी माँ श्यामा के अतिरिक्त एक और बूढ़ी हथनी ने उसे चलना सिखाया। दंतक के कारण ही झुंड के अन्य हाथी भी अब धीरे-धीरे चलते थे। वे नदी पर जाते तो हथनियाँ सूँड़ में पानी भरकर दंतक पर डालतीं।

एक रात वे नदी से नहाकर लौट रहे थे। जंगल में शिकारियों ने गड्ढा खोदकर घास-फूस से ढाँप रखा था। कई हाथी बचकर निकल गए। दंतक को तो गड्ढे का ज्ञान नहीं था। श्यामा उसे बचाने के प्रयास में खुद गड्ढे में गिर गई।

झुंड के सभी हाथी गड्ढे के इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गए। कोई सूँड़ से हथनी को निकालने की कोशिश करने लगा तो कोई गुस्से में पेड़ों की टहनियाँ तोड़कर गड्ढे की तरफ फेंकता। दंतक को कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या करे? श्यामा रह-रहकर चीख रही थी।

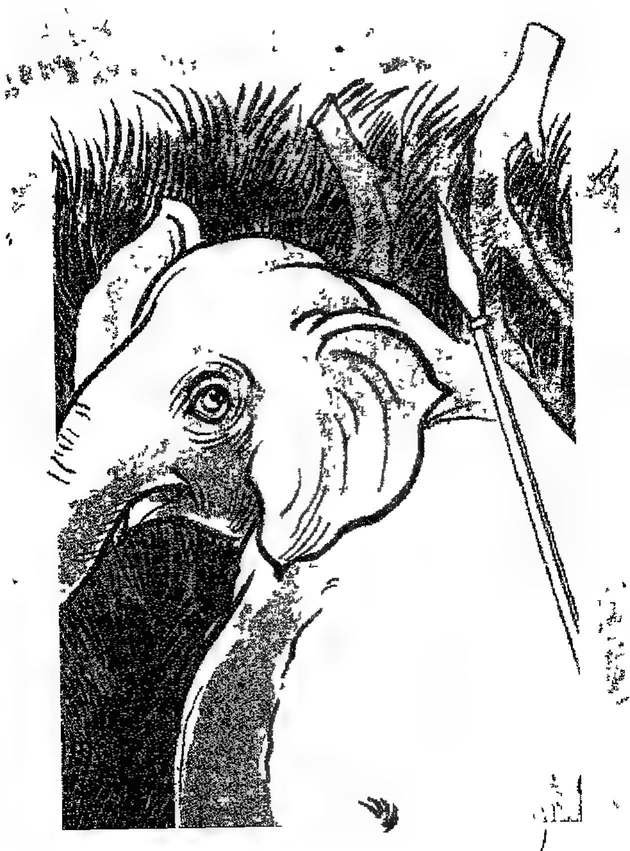
काफी कोशिशों के बाद भी जब कुछ नहीं बना तो झुंड के सरदार ने सोचा, सुबह शिकारी आ जाएँगे। इसके साथ-साथ वे और हाथियों को भी हानि पहुँचा सकते हैं। उसने इशारे से दूसरे हाथियों को कहा —"दंतक को अपने साथ लेकर यहाँ से चलो।"

दंतक तो माँ से दूर हटने को बिलकुल तैयार न था। हाथी आपस मे थोडी देर बाद श्यामा ने दतक से कहा

''बेटा! तुम इनके साथ चले जाओ। मेरा निव
है।''

न चाहते हुए भी दंतक को अन्य हाथियों वे

अगले दिन शिकारी आए तो गड्ढे में फँस
खुश हुए। सोचा, इस बार इसे अधिक दामों



बार राजा नरवीर ने छह हजार स्वर्ण मुद्राएँ दी थीं। इस बार सात सहस्र से कम न मिलेंगी। अन्य दो पालतू हाथियों के साथ मिलकर उन्होंने श्यामा को बाहर निकाल लिया।

नरवीर की सेना में हजारों हाथी, घोड़े और रथ थे। वह अपनी सेना को और बढ़ाना चाहता था। इसलिए शिकारियों को आदेश था कि जंगल से हाथी पकड़कर लाओ, ऊँची कीमत मिलेगी।

नरवीर बहादुर तो था, पर था लालची। उसके खजाने सोने-चाँदी से भरे थे, लेकिन उसकी इच्छा थी कि पड़ोसी राजाओं का धन भी उसे मिल जाए। ब्रह्मपुरी रियासत के बड़े इलाके पर उसने कब्जा कर रखा था। ब्रह्मपुरी का राजा महासिंह बूढ़ा हो चला था। महासिंह की संतान न होने के कारण नरवीर की नजर उसके पूरे राज्य पर लगी थी। ब्रह्मपुरी धन-धान्य से भरपूर थी। नरवीर की योजना थी कि ब्रह्मपुरी की दौलत मिलने पर उसकी शक्ति कई गुना बढ़ जाएगी, तब वह पूर्वा और अंचला रियासतों पर भी कब्जा कर लेगा।

हथनी को नरवीर ने खरीद लिया। उसने महावत से कहा—"इसे शीघ्र प्रशिक्षित करो। युद्ध में इसे भी जाना होगा।"

विशाल जंगल में हाथियों के अनेक झुंड थे। शिकारी हर माह किसी न किसी झुंड से हाथी को पकड़ लाते। फिर उसे प्रशिक्षित करके सेना में भर्ती कर लिया जाता।

श्यामा हर समय दंतक की याद में खोई रहती। महावत के आदेशों की तरफ उसका ध्यान ही न जाता। निर्दयी महावत उस पर अंकुश से वार करता। उसे कई-कई दिन भूखा रखा जाता था। श्यामा की आँखों में आँसू छलक आते। उसे राज सैनिकों से घृणा हो गई थी।

राजा महासिंह की सेना में भी अनेक हाथी थे। नरवीर के हमले से बचने के लिए उसे भी अपनी सेना बढ़ानी थी। उसने भी और हाथी सम्मिलित करने की सोची।

महासिह के मुख्य महावत का नाम गजेन्द्र था। नए हाथियों के प्रशिक्षण का कार्य वह स्वयं देखता था। गजेन्द्र की यह विशेषता थी कि वह हाथियों को बड़े स्नेह से प्रशिक्षित करता था। कुछ उद्दंड हाथियों को छोड़कर ऐसे अवसर बहुत कम आए जब उसने किसी को अंकुश से मारा हो।

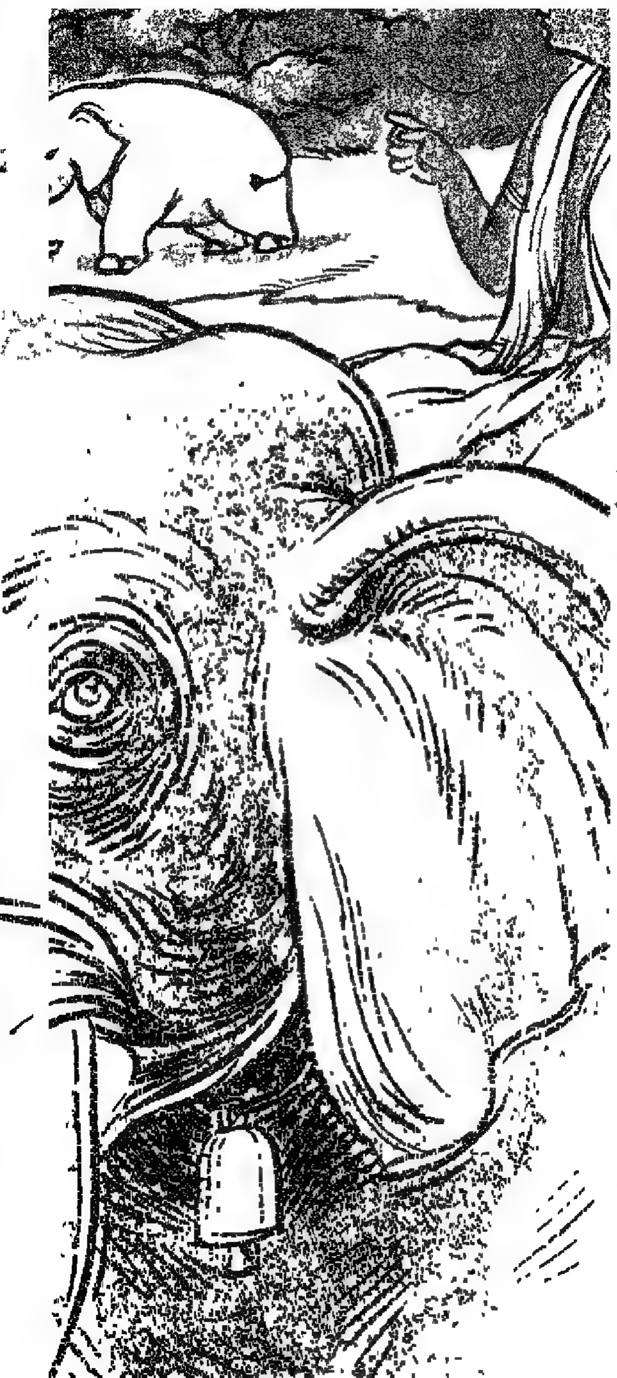
गजेन्द्र का बेटा था सत्येन्द्र। वह भी पिता के साथ हाथियों के प्रशिक्षण का काम देखता था।

उधर श्यामा के चले जाने के बाद झुंड की दूसरी हथनियों ने दंतक का ध्यान रखना शुरू कर दिया, परंतु दंतक अपनी माँ को भूल नहीं पा रहा था। वह जब-तब झुंड से अलग हो जाता। तब बूढ़ी हथनी उसे वापस लेकर आती।

एक रात खूब बारिश हुई। तेज हवा से पेड़ टूट-टूटकर गिर रहे थे। ऐसे में झुंड के हाथी इधर-उधर बिखर गए। दंतक को माँ की बहुत याद आ रही थी। वह सीधा नगर की ओर चल पड़ा। सुबह होते तक वह जंगल से बाहर निकल आया।

उधर नदी-किनारे महावत गजेन्द्र प्रशिक्षित हाथियों को पानी पिलाकर शिविर की ओर ले जा रहा था। उसके साथ सत्येन्द्र भी था। उन्होंने एक हाथी के बच्चे को जंगल से बाहर आते देखा तो आश्चर्य हुआ। गजेन्द्र ने कहा—"यह बच्चा तो अभी छोटा है। इसे वापस जंगल में भेज देना चाहिए।"

सत्येन्द्र बोला—"लगता है, यह अपने झुंड से अलग हो गया है। वापस जंगल में जाने पर तो शेर आदि हिंसक जानवर इसे



अकेला और असहाय जान मार डालेंगे। हमें इसे शिविर में ले चलना चाहिए।''

गजेन्द्र को सत्येन्द्र की बात जँची। प्रशिक्षित हाथियों की मदद से वे दंतक को शिविर में ले आए। अब दंतक अन्य हाथियों के साथ शिविर में ही रहने लगा। शीघ्र ही सत्येन्द्र से उसकी मित्रता हो गई। गजेन्द्र जब अन्य हाथियों को प्रशिक्षित करता तो सत्येन्द्र दंतक के साथ खेलता रहता। दंतक उसे अपनी पीठ पर भी बैठा लेता। धीरे-धीरे वह सत्येन्द्र के इशारे समझने लगा। गजेन्द्र ने देखा, दंतक अन्य हाथियों की तरह प्रशिक्षित होता जा रहा है।

एक दिन मौका देख नरवीर ने ब्रह्मपुरी पर हमला कर दिया। घमासान लड़ाई हुई। नरवीर के सैनिक हाथी, घोड़ों एवं रथों पर सवार होकर लड़ रहे थे। महासिंह के पास हाथी-घोड़ों की अपेक्षा पैदल सैनिक अधिक थे। पैदल सैनिक हाथी-घोड़ों पर सवार सैनिकों का मुकाबला कब तक करते? शनैः-शनैः महासिंह की सेना हारने लगी।

नरवीर के हाथियों ने महासिंह के अनेक सैनिकों को रौंद डाला। गजेन्द्र अपने प्रशिक्षित हाथी पर सवार होकर बहादुरी से लड़ रहा था। पर अचानक उसके हाथी को शत्रु सेना के छह-सात हाथियों ने घेर लिया। गजेन्द्र ने सूझबूझ से उनका मुकाबला किया, पर कितनी देर सामना करता? उसे लगने लगा, अब हार निश्चित है।

सत्येन्द्र बहादुर पिता का बहादुर बेटा था। वह अपनी मातृभूमि के लिए कुछ भी करने को तैयार था। उस समय शिविर में कोई हाथी न था। बचा था सिर्फ दंतक। सत्येन्द्र दंतक पर सवार हो युद्धस्थल की ओर चल पड़ा।

वहाँ आकर उसने अपने पिता को शत्रुओं से घिरे देखा तो

उसका खून खौल उठा। उसने चिल्लाकर दंतक से कहा—"मित्र! आगे बढ़ो।"

दंतक बिना भय के हाथियों के झुंड में घुस गया। गजेन्द्र के हाथी को जिन हाथियों ने घेर रखा था उनमें श्यामा भी थी। श्यामा ने दंतक को देखा तो पहचान गई। दंतक को भी अपनी माँ को पहचानने में समय नहीं लगा।

सत्येन्द्र पुनः बोला—"मित्र, आगे बढ़कर रास्ता रोको।"

दंतक ने चीखकर माँ को सारी बात समझा दी। नरवीर के महावत ने अंकुश से दंतक पर वार किया।

श्यामा के शरीर पर नरवीर के महावतों के घाव अभी भी थे, पर अपने बेटे पर महावत के वार से वह क्रोधित हो उठी। वह बदला लेने को आतुर हो गई।

उसने चीखकर दूसरे हाथियों से कुछ कहा। दूसरे हाथी भी महावतों के अत्याचार से दुखी थे। एकाएक सब विद्रोही हो उठे। वे नरवीर के सैनिकों को ही मारने लगे। कई महावतों को गिराकर कुचल डाला।

महासिंह के भागते सैनिकों को जब पता चला कि नरवीर की सेना हाथियों के कारण हार रही है तो वे दुगने उत्साह से वापस लौट पड़े। नरवीर की सेना के कदम डगमगा गए।

स्थिति को देख शाही रथ में सवार नरवीर भागने लगा। महासिंह के सैनिकों ने उसे देख लिया। वे उसे पकड़कर अपने राजा के पास ले गए।

महासिंह ने देखा तो बोला—"नरवीर! लालच बहुत बुरी चीज है। हमने तुम्हारे राज्य की इच्छा कभी नहीं की, पर तुमने हमारे इलाके को हड़प लिया। अब तुम सारी उम्र मेरी कैद में रहोगे।"

नरवीर गर्दन झुकाए चुपचाप खड़ा रहा। तब तक सत्येन्द्र औ गजेन्द्र भी अपने हाथियों सहित वहाँ पहुँच गए। उनके साथ श्याम हथनी भी थी।

महासिंह ने सत्येन्द्र को गले से लगा लिया। कहा—"बेटा! इस जीत का सेहरा तुम्हारे सिर है। तुम्हें मनचाहा इनाम मिलेगा।"

सत्येन्द्र बोला—"महाराज! इसका श्रेय मुझे नहीं, इस छोटे हाथी को दें। इसी की बदौलत हम यह युद्ध जीत सके। इनाम का सच्चा हकदार भी यही है।"

दंतक माँ के पास खड़ा सूँड़ हिला रहा था।

गजेन्द्र बोला—"महाराज! नन्हे हाथी को उसकी माँ मिल गई और माँ को बेटा।"

महासिंह ने कहा—"अब नरवीर का भय खत्म हो गया है। हमें अपनी सेना को और बढ़ाने की जरूरत नहीं। इन दोनों को आजाद कर दो ताकि ये वापस अपने झुंड में जा सकें।"

सेनापति और मंत्री ने भी राजा की बात का समर्थन किया।

अगले दिन धूमधाम से दंतक और श्यामा को जंगल की ओर विदा किया गया। जंगल में प्रवेश करते समय दंतक ने सूँड़ उठाई, मानो कह रहा हो—'अलविदा सत्येन्द्र! अलविदा!'

सत्येन्द्र ने भी मुस्कराकर हाथ हिला दिया।

□

# आँख न देखे

भौमपुर नगर के व्यापारी नौकाओं में अपना सामान लादकर समुद्र पार देशों में बेचने जाते थे। वे मसाले, कपड़े, दवाइयाँ वगैरह ले जाते और विदेशों में इन्हें बेचकर काफी धन कमाते। वापसी में वहाँ से सोना-चाँदी और हीरे-जवाहरात ले आते थे।

एक बार वे समुद्री मार्ग से गुजर रहे थे। अचानक जोर का तूफान आया। नौकाएँ डोलने लगीं। व्यापारी सहायता के लिए चिल्लाए, पर समुद्र में उनकी सहायता को कौन आता? नौकाएँ डूब गईं। व्यापारी लकड़ी के तख्तों के सहारे जैसे-तैसे किनारे पर पहुँच गए।

किनारे पर आकर उन्हें पता चला कि उनका साथी गोकुलदास नहीं है। उन्हें चिंता हुई कि कहीं वह समुद्र में न भटक गया हो। उन्हें गोकुलदास की नाव दूर-दूर तक दिखाई नहीं दी। काफी इंतजार के बाद भी गोकुलदास किनारे पर नहीं पहुँचा। व्यापारियों को विश्वास हो गया कि वह समुद्र में डूब गया है या उसे किसी समुद्री जीव ने निगल लिया है।

वे यह दुःखद समाचार सुनाने गोकुलदास के घर की ओर चल पड़े।

गोकुलदास के परिवार में पत्नी, एक पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्र का नाम था—आलोक। पुत्री का नाम था—तृषा।

व्यापारियों ने गोकुलदास की मृत्यु की सूचना दी तो उसकी पत्नी रोने लगी। आलोक ने अपनी माँ को समझाया।

आलोक ने व्यापारियो से पूछा—''आप अब समुद्र-यात्रा पर कब जाएँगे ?''

व्यापारियों ने बताया—''हमारी नौकाएँ डूब गई है। अब हम नई नावे तैयार करेंगे, तब माल भरकर बेचने जाएँगे।''

आलोक ने कहा—''इस बार मै भी आपके साथ चलूँगा।''

एक व्यापारी बोला—''बेटा! तुम अभी छोटे हो। बडे होकर हमारे साथ चलना।''

आलोक की माँ ने भी उसे समझाया, पर आलोक नही माना।

उसने एक नौका खरीदी। उसमे सामान भर लिया। फिर एक दिन व्यापारियों के साथ वह भी नौका में सवार होकर चल पड़ा।

दिन-भर चलने के बाद वे उसी जगह पहुँच गए जहाँ तूफान मे गोकुलदास उनसे बिछुड़ा था। एक बूढ़े व्यापारी ने आलोक से कहा—''बेटा! यहीं उस दिन तुम्हारे पिता हमसे बिछुडे थे।''

यह सुन आलोक अपने पिता की याद मे खो गया। उसे लगा—जैसे पिता उसे आवाज दे रहे है। वह कुछ पल लहरो को एकटक देखता रहा। तभी उसे ध्यान आया, लहरें पूर्व से पश्चिम की ओर बह रही है। अवश्य ही तूफान वाले दिन पिता जी की नौका बहते-बहते पश्चिम की ओर गई होगी।

उसने बूढ़े व्यापारी से कहा—''बाबा! मैं अपनी नाव पश्चिम दिशा की ओर ले जाऊँगा।''

दूसरे व्यापारियो ने आलोक को समझाया—''बेटा! उधर दूर-दूर तक कोई देश नहीं है। सभी व्यापारी दक्षिणी देशों में सामान बेचने जाते है।''



पर आलोक तो अपने पिता को ढूँढने निकला था। उसने अपनी नाव पश्चिम की ओर मोड दी। तीन दिन और तीन रात चलने के बाद आलोक को आकाश मे कुछ पक्षी उडते नजर आए। वह समझ गया कि पास में कोई टापू है।



उसमें नया उत्साह भर गया। वह तेजी से चप्पू चलाने लगा कुछ देर बाद टापू साफ दिखाई देने लगा। दोपहर से पहले ही वह किनारे पर पहुँच गया।

आलोक ने देखा, तट पर लकड़ी का एक तख्ता पड़ा था उसने तुरंत पहचान लिया—'यह तो पिता जी की नौका का तख्ता है। फिर तो पिता जी अवश्य ही इस टापू पर आए होंगे।' उसने सोचा।

आलोक नौका को एक बड़े पत्थर से बाँधकर टापू पर घूमने लगा। उसे एक पेड़ पर कबूतर और बाज बैठे दिखाई पड़े। वह हैरान रह गया, क्योंकि उसने सुन रखा था कि बाज कबूतरों को खा जाता है; पर यहाँ कबूतर बाज के सामने निडर होकर घूम रहे हैं। उसे कुछ समझ में न आया।

वह एक बड़ी शिला पर चढ़कर देखने लगा। शायद कहीं पिता दिखाई दे जाएँ। तभी उसकी नजर हिरन के छोटे-छोटे बच्चों पर पड़ी। वे कुलाँचें भरते उछल-कूद रहे थे। उनके साथ शेर के दो बच्चे भी खेल रहे थे।

आलोक को बहुत आश्चर्य हुआ। यह कैसा देश है! बाज और कबूतर एक डाल पर बैठे हैं। हिरन और सिंह साथ-साथ खेल रहे हैं। वह शिला से उतरा, फिर एक पगडंडी से होता हुआ आगे बढ़ा। वह एक बाजार में पहुँचा। वहाँ दुकानें तरह-तरह के माल से भरी थीं, पर दुकानों में कोई दुकानदार नहीं था।

आलोक एक मिठाई की दुकान पर पहुँचा। उसने दुकानदार को आवाज दी, पर कोई नहीं आया। अचानक उसे दो राहगीर आते नजर आए।

आलोक ने उनसे पूछा—"भाई! क्या यहाँ कोई दुकानदार नहीं है?"

आलोक को देखते ही वे समझ गए कि यह कोई परदेसी है। उन्होंने बताया—"यहाँ व्यापारी दुकानों पर खुद नहीं बैठते। वे सामान रखकर चले जाते हैं और खुद दूसरा काम करते हैं। खरीदार खुद ही सामान लेकर पैसे गुल्लक में डाल देते हैं।"

आलोक ने पूछा—"क्या यहाँ कोई चोर नहीं आता?"

"चोर!" दोनों राहगीर हँस पड़े—"हम लोग चोरी को जानते तक नहीं। इस टापू पर कुलदेवता की कृपा है। सब मिल-जुलकर रहते हैं। जो कुलदेवता के आदेश का उल्लंघन करता है, वह अंधा हो जाता है।

" पिछले दिनों एक आदमी ने कुछ चीजें चुराने की कोशिश की थी। उसी दिन वह अंधा हो गया। आज तक वह देवता के मंदिर में बैठकर प्रायश्चित्त कर रहा है।" एक राहगीर ने बताया।

आलोक ने पूछा—"उसका शाप कब खत्म होगा?"

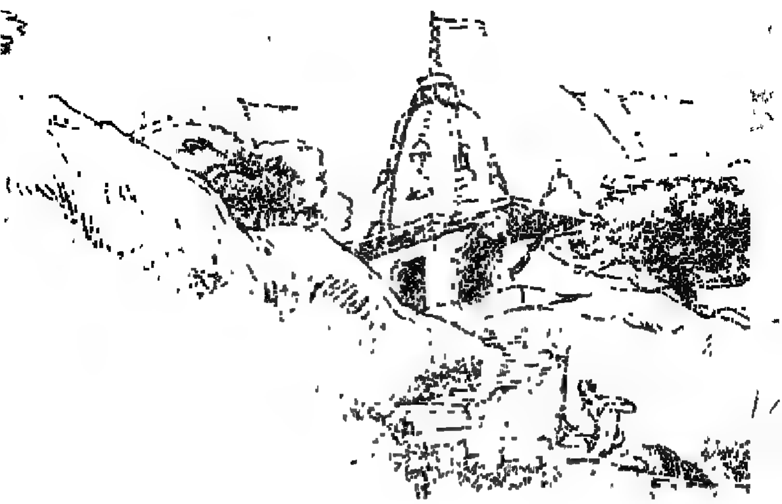
"पहले वह चोरी किए माल की दुगनी कीमत गुल्लक में डाले, फिर सब नागरिक इकट्ठे होकर मंदिर में कुलदेवता की प्रार्थना करेंगे। पुजारी उस व्यक्ति को चरणामृत देगा। चरणामृत के सेवन से उसकी आँखों की रोशनी लौट आएगी।" उन लोगों ने कहा।

आलोक बोला—"मैं उस आदमी से मिलना चाहता हूँ।"

दूसरा आदमी बोला—"सामने पहाड़ी की तलहटी में एक मंदिर है। वह व्यक्ति तुम्हें वहीं मिलेगा।"

इतना कहकर राहगीर चले गए। आलोक को बहुत भूख लगी थी। उसने सोने की कुछ अशर्फियाँ गुल्लक में डालीं और कुछ मिठाइयाँ लेकर खाईं।

आलोक मिठाई खाकर मंदिर की ओर चल पड़ा। कुछ दूर जाकर उसे मंदिर की सीढ़ियाँ नजर आईं उसने देखा सीढ़ियों



पर एक आदमी बैठा है। पास गया तो चौंका, क्योंकि वह उ
पिता गोकुलदास थे। उसने दौड़कर उनके चरण पकड़ लिए।

गोकुलदास ने बेटे की आवाज पहचान ली और उठकर
गले से लगा लिया। दोनों की आँखों से आँसू छलक उठे।

गोकुलदास ने पूछा—"बेटा! तुम यहाँ कैसे पहुँचे?"

आलोक ने पूरा हाल कह सुनाया।

गोकुलदास ने बताया—"बेटा! उस दिन तूफान बहुत तेज
सब व्यापारी बिछुड़ गए। मेरी नाव समुद्र में डूब गई। सौभाग
मुझे नौका में रखा एक तख्ता हाथ लग गया। मैं उसी के स
किसी तरह इस टापू पर पहुँचा। ज्योंही मैं यहाँ आया, भूख-प
से मेरा बुरा हाल था। मैं घूमता हुआ एक दुकान पर पहुँचा।



पास एक पैसा भी नहीं था। मैंने आव देखा न ताव, चुपचाप एक दुकान में घुस गया। भरपेट भोजन किया और बाहर निकल आया। शाम को मंदिर के पास से गुजरा तो अचानक मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मुझे कुछ दिखाई नहीं दिया। बस, तभी से मैं यहीं बैठा हूँ। कुछ भले लोग मुझे सुबह-शाम खाना दे जाते हैं।''

आलोक बोला—''पिता जी! अब आप चिंता न करें। शीघ्र ही आपकी आँखें ठीक हो जाएँगी।''

''वह कैसे?'' गोकुलदास ने पूछा।

आलोक ने राहगीरों द्वारा बताई बात उन्हें बता दी। फिर उसने कुछ स्वर्ण मुद्राएँ पिता गोकुलदास को दीं। उसने कहा—''इन्हें उसी दुकान की गुल्लक में डाल दो, जहाँ आपने खाना खाया था।''

आलोक अपने पिता का हाथ थाम उस दुकान तक ले गया। गोकुलदास ने पैसे गुल्लक में डाल दिए।

अगले दिन नगरवासियों ने मंदिर में एकत्र होकर कुलदेवता से प्रार्थना की। पुजारी ने चरणामृत दिया।

चरणामृत लेते ही गोकुलदास की नेत्र-ज्योति लौट आई। बाप-बेटे बहुत खुश थे।

अगले दिन दोनों नाव में सवार होकर भौमपुर की ओर चल पड़े। बेटे ने खोए पिता को पा लिया था।

□

# दुश्मन का बेटा

पूर्व में एक रियासत थी भामती। वहाँ का राजा था वलयसिह। उसकी पत्नी का नाम त्र्यम्बा था। वलयसिह और त्र्यम्बा अपनी प्रजा से बहुत प्रेम करते थे। राजकुमार सम्यक अपने माता-पिता की तरह समझदार था। भामती के पड़ोस में एक अन्य रियासत थी सामधी। वहाँ का राजा दानसिंह वीर तो था, पर था लालची। वह हर समय पड़ोसी राजाओं की भूमि हड़पने की सोचता। उसका खजाना धन से भरा था। लोगों की भलाई पर उसे खर्च करने की बजाय वह और धन चाहता था। उसकी विशाल सेना के कारण कोई भी राजा उसकी तरफ आँखें उठाकर नहीं देखता था।

वलयसिंह के शासनकाल में भामती समृद्ध रियासत बन गई थी। लोग सुख-वैभव से जीवन बिता रहे थे।

दानसिंह से भामती की समृद्धि देखी नहीं गई। एक दिन मौका पाकर उसने भामती पर चढ़ाई कर दी। वलयसिह ने वीरता से शत्रु का सामना किया। कई दिन तक लड़ाई चलती रही, परंतु वलयसिंह के मुट्ठी-भर सैनिक दानसिह की भारी-भरकम सेना का मुकाबला कब तक करते? एक दिन शत्रु सैनिकों ने वलयसिंह को घेर लिया। राजा के अंगरक्षकों ने जब देखा कि महाराज दुश्मनों से घिर गए हैं तो वे जान की बाजी लगाकर शत्रु पर टूट पड़े। वे वलयसिह को बचा घने जंगल में भगा ले गए।

उधर युद्ध शुरू होते ही कुछ वफादार सिपाही महल में पहुँच गए थे। वे भी रानी त्र्यम्बा तथा कुमार सम्यक को ले सुरक्षित जंगल में पहुँच गए। राजा ने रानी और राजकुमार को सकुशल देख चैन की साँस ली। वे वहीं कुटी बनाकर रहने लगे।

एक दिन वलयसिंह जंगल में उदास बैठा था। रानी त्र्यम्बा ने समझाया—"महाराज, हमें इस तरह हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। हमारी प्रजा अब भी हमसे प्रेम करती है।"

राजा ने उदास मन से कहा—"महारानी, मुझे जंगल में रहने का कोई दुःख नहीं। दुःख है तो सिर्फ प्रजा का। हमारे यहाँ आने के बाद उस पर न जाने क्या गुजर रही होगी?"

राजकुमार सम्यक माता-पिता की पीड़ा समझता था, पर क्या करता?

उनकी कुटिया के सामने पेड़ों पर बया पक्षियों के घोंसले थे। सुंदर-सुंदर घोंसले देख सम्यक को अकसर अपना महल याद आ जाता। उसने निश्चय किया, जैसे भी हो, वह अपना राज्य प्राप्त करके रहेगा।

जंगल में रहते कई साल बीत गए। उन्हें कंदमूल खाकर गुजारा करना पड़ रहा था। उनके राजसी वस्त्र भी फट गए थे।

उधर दानसिंह ने एक के बाद एक कई रियासतें जीत लीं। राजाओं को बंदी बना लिया। दानसिंह की पत्नी सविता ने पति को समझाया—"महाराज, हमारी एक ही तो बेटी है। फिर यह सब आप किसके लिए कर रहे हैं? किसी सुयोग्य वर से इसका विवाह हो जाए, मेरी तो यही कामना है।"

दानसिंह पर तो जैसे दौलत का भूत सवार था। उसने सविता से कहा—"महारानी, तुम चिंता न करो। मैं अपनी बेटी कांता का

विवाह किसी सुंदर और वीर राजकुमार से करूँगा। फिर सारा राज्‌
उसे ही सौंप दूँगा। वह राजकुमार चक्रवर्ती राजा बनेगा।''

कुछ दिन बाद दानसिह ने कांता के स्वयंवर की घोषणा कर
दी। सभी राजाओं को संदेश भिजवा दिए गए।

दूर-दूर तक राजकुमारी की सुंदरता की चर्चा थी। दानसिह
की इकलौती बेटी होने के कारण सारा राज्य उसे ही मिलना था।
इसलिए हर कोई उससे विवाह की इच्छा सँजोए था।

स्वयंवर की कुछ शर्तें थीं। इनमें राजकुमारी के प्रश्नों के उत्तर
देना भी शामिल था।

कांता ने अपने पिता को सोने-चाँदी के लिए लड़ते देखा था।
इसी कारण उसे सोने, चाँदी व राजसी वस्त्रों से नफरत-सी हो
गई थी। उसने कहलवा दिया—स्वयंवर में कोई भी राजकुमार सोने-
चाँदी या हीरे-मोती जड़ी राजसी पोशाक पहनकर न आए।

कांता की शर्त सुनकर सब हैरान थे। राजा होकर भी राजसी
वस्त्र न पहने, भला यह कैसे हो सकता है? पर क्या करते! स्वयंवर
में आना था तो राजकुमारी की शर्त भी माननी थी।

वलयसिंह के एक गुप्तचर ने स्वयंवर की बात राजकुमार सम्यक
को बता दी। कुमार सम्यक ने भी स्वयंवर में जाने का मन बना
लिया। वलयसिंह और त्र्यम्बा ने उसे रोका। उन्हें भय था कि
दानसिंह राजकुमार सम्यक को शत्रु राजा का बेटा समझ कैद कर
सकता है।

सम्यक ने उन्हें विश्वास दिलाया तो वे मान गए और जाने की
अनुमति दे दी।

स्वयंवर का दिन आया। बहुत-से राजा-महाराजा और राजकुमार
दानसिंह के महल में पहुँच गए थे। सभी ने सादे कपड़े पहन रखे
थे। थोड़ी देर में राजकुमार सम्यक भी वहाँ पहुँच गया। उसने

वृक्ष की छाल पहन रखी थी। सिर पर बया के घोंसले से बनी एक सुंदर टोपी थी।

अन्य राजाओं ने सम्यक को देखा तो उसका मजाक उड़ाने लगे, लेकिन सम्यक चुपचाप एक तरफ बैठ गया।

थोड़ी देर बाद राजकुमारी सभा में आई। उसने सबका अभिवादन किया और एक नजर सब मेहमानों पर डाली। अचानक उसकी नजर सम्यक पर ठहर गई। उसकी सादी पोशाक और टोपी ने राजकुमारी का मन मोह लिया।

तभी एक सेविका एक थाली लेकर आई। उसमें पानी भरा था। पानी में एक छोटी नाव तैर रही थी।

राजकुमारी ने कहा—"हमारे व्यापारी नौकाओं में सामान भरकर विदेशों में व्यापार के लिए जाते हैं। इस नौका में क्या रखें कि व्यापारियों को लाभ हो?"

सभी राजा सोच में पड़ गए। एक ने कहा—"इसमें वस्त्र रखे जाने चाहिए। पड़ोसी देशों में कपड़े की कमी है। कपड़ा बेचकर व्यापारी लाभ कमा सकते हैं।"

दूसरा बोला—"इसमें हीरे-जवाहरात भर दो। इनसे व्यापार में सबसे अधिक लाभ होता है।"

तीसरे ने कहा—"अन्न एवं मसाले बेचना ठीक होगा।"

इस प्रकार हर कोई अपने-अपने दिमाग से जवाब देता रहा। राजकुमारी चुपचाप सुनती रही।

अंत में सम्यक की बारी आई। उसने गंभीर होकर कहा—"नौका में चप्पू नहीं है। बिना चप्पू के नाव वैसे ही होती है, जैसे बिना राजा के राज्य। चप्पूरहित नौका में जो भी रखोगे वह सब डूब जाएगा। व्यापारियों को लाभ तभी होगा, जब नाव में माँझी के पास चप्पू होगा।"



सम्यक की बात सुन सब दंग रह गए। यह तो किस
नहीं था। राजकुमारी ने मुस्कराकर सम्यक की तरफ
तभी दूसरी सेविका एक डिबिया लेकर आई। उसमे
ी थी।

राजकुमारी ने कहा—"इसकी शादी करनी है, दूल्हा तो बताओ।"

यह प्रश्न तो और भी जटिल था। सबकी गर्दनें झुक गईं।

सम्यक बोला—"पति-पत्नी एक-दूसरे के पूरक होते हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा रह जाता है। मेरी दृष्टि में इस सुई का विवाह धागे के साथ कर देना चाहिए। बिना धागे के सुई की उपयोगिता नहीं।"

यह उत्तर सुन कांता खुशी से झूम उठी। उसने तुरंत वरमाला सम्यक के गले में डाल दी। सभागार तालियों से गूँज उठा।

दानसिंह को पता लगा कि उसकी बेटी ने वलयसिंह के पुत्र सम्यक को पति रूप में चुना है। यह जान उसे बहुत क्रोध आया।

रानी सविता ने कहा—"नाथ! अब यह दुश्मन का पुत्र नहीं, अपितु हमारा दामाद हो गया है।"

रानी की बात दानसिंह के गले उतर गई। उसने अपना पूरा राज्य सम्यक को सौंप दिया।

यह खबर जंगल में महाराज वलयसिंह को मिली। वह भी रानी त्र्यम्बा के साथ वहाँ पहुँच गए। दानसिंह और वलयसिंह गले मिले।

□

# मिठाई दो

किसी गाँव में देवपति नामक एक व्यक्ति रहता था। उसे बहुत कम सुनाई देता था। इसी से उसके पड़ोसी उसे 'बहरा-बहरा' कहकर चिढ़ाते। शरारती बच्चे कभी-कभी उसके बर्तन और वस्त्र भी उठा ले जाते।

दुखी होकर एक दिन उसने सोचा—'क्यों न गाँव छोड़कर कहीं और चला जाऊँ, जहाँ लोग मुझे न चिढ़ाएँ !'

अगले दिन प्रातः देवपति घर छोड़कर चल पड़ा। दोपहर तक चलने के बाद वह एक बाग में पहुँचा। पास ही एक कुआँ था। उस कुएँ से डरावनी आवाज आती थी। अतः कोई भी उधर नहीं जाता था।

देवपति को प्यास लगी थी। वह कुएँ की ओर बढ़ गया। पानी पीने के लिए उसने डोल कुएँ में डाला। कुएँ से आवाज आती रही, पर देवपति तो काफी ऊँचा सुनता था अतः वह निश्चिंत होकर पानी खींचने लगा। कुछ देर बाद डरावनी आवाज आनी समाप्त हो गई और कुएँ से मधुर आवाज आई—"मुझे बाहर निकालो।"

जब डोल बाहर आया तो उसमें एक मेंढक बैठा था। मेंढक ने देवपति से कहा—"तुमने मुझे बाहर निकाला है। कुछ माँग लो।"

पर देवपति को सुनाई नहीं दिया। वह पानी पीकर आगे बढ़ गया।



सरे कोने में एक मकान था। मकान के बाहर एक
देवपति ने देखा तो सोचा, कहीं इसे पता न लग
म सुनता हूँ अत स्वयं ही बोला—"बाबा मैं दू

से आ रहा हूँ। अब रात होने वाली है। क्या आज आपके पास रुक सकता हूँ?"

बूढ़े ने स्वीकृति में गर्दन हिला दी। देवपति अंदर गया। वहाँ कमरे में एक पलंग बिछा था। देवपति उस पर बैठ गया।

बूढ़े की एक लड़की थी। वह तुतलाकर बोलती थी। बूढ़े को उसके विवाह की चिंता थी, क्योंकि जो भी उसे देखता, उसकी आवाज सुनते ही विवाह के लिए मना कर देता था।

जब वह लड़की देवपति के लिए भोजन लेकर आई तो देवपति ने सोचा, कहीं उसके कम सुनने वाली बात वह लड़की न जान ले अतः स्वयं ही बोला—"देखो, पक्षी कितना शोर मचा रहे हैं।"

पक्षियों का शोर तो था ही नहीं। लड़की समझ गई—अवश्य इसे सुनाई नहीं देता। वह अपनी तुतलाती आवाज में बोली—"पच्छियों ती तलह बोलना अच्छा लदता है।"

देवपति उसकी बात नहीं सुन सका। उसने समझा—'यह कह रही है, हाँ, पक्षी शोर मचा रहे हैं।'

वह फिर बोला—"तुम्हारी आवाज बहुत अच्छी है।"

लड़की खुश हो गई। पहली बार किसी ने उसे सराहा था। देवपति भी प्रसन्न था कि यहाँ उसे चिढ़ाया नहीं गया।

बूढ़े ने सब देख-सुन लिया था। उसने तुरंत दोनों का विवाह कर दिया।

देवपति प्रसन्न मन से अपनी पत्नी को लेकर वापस अपने गाँव की ओर चल पड़ा। उसने सोचा—'अब गाँव वाले मेरा मजाक नहीं उड़ाएँगे।'

वापसी में जब वे उसी कुएँ के पास से गुजरे तो डोल में पड़ा मेंढक अभी भी बोल रहा था। देवपति की पत्नी ने उसे उठा लिया।

रास्ते में मेंढक ने कहा "आज तक मुझे कुएँ से किसी ने

नहीं निकाला। सब कुएँ की भयंकर आवाज से डरते थे। देवपति ने मुझे निकालकर उपकार किया है। मैं पाँच दिन तक प्रतिदिन तुम्हें मुँहमाँगी चीज दूँगा, लेकिन पाँच दिन बाद मैं अपने मित्र के पास चला जाऊँगा।''

लड़की ने कहा—''मेरी आवाज ठीक कर दो। मेरे पति के कान ठीक कर दो।''

मेंढक जोर से टर्राया। उसे सुनते ही देवपति के कान ठीक हो गए।

फिर मेंढक ने लड़की से कहा—''तुम अपनी जीभ बाहर निकालो। मैं उसे छू दूँगा तो ठीक हो जाएगी।''

लड़की ने ऐसा ही किया। मेंढक के छूने से सचमुच वह ठीक हो गई। अब दोनों बहुत खुश होकर अपने घर लौट आए। जब पड़ोसियों को पता चला कि देवपति पत्नी को लेकर आया है तो वे उसे देखने उसके घर आए।

उनके सामने ही देवपति की पत्नी ने मेंढक से कहा—''हमें मिठाई दो।''

मेंढक एक बार टर्राया। थोड़ी देर में मिठाई आ गई। देवपति की पत्नी ने सबको मिठाई बाँटी। पड़ोसियों ने करामाती मेंढक देखा तो वे हैरान रह गए। उन्होंने मिलकर सलाह की, क्यों न इस मेंढक को चुरा ले जाएँ। फिर हम इससे बहुत कुछ पा सकते हैं।

अगली रात वे मेंढक को चुरा ले गए। जब देवपति को पता चला कि पड़ोसियों ने उसका मेंढक चुरा लिया है तो उसे बहुत दुःख हुआ। उदास मन से अगले दिन वह फिर उसी कुएँ पर पहुँचा। कुएँ के बाहर एक और मेंढक बैठा था। उस मेंढक ने पूछा—''कहो भाई, मेरा मित्र तो ठीक है?''

देवपति ने उसे सारी बात बता दी पूरी बात सुन मेंढक ने

कहा—"तुम मुझे अपने साथ ले चलो। मैं तुम्हें कुछ दे तो नहीं सकता, पर अपने मित्र को तुम्हें वापस दिला दूँगा। तुम अपने घर मुझसे भी कुछ माँगना।"

देवपति मेंढक को लेकर अपने घर आ गया। उसने मेंढक से कहा—"मुझे भूख लगी है, मिठाई दो।"

मेंढक तीन बार जोर-जोर से टर्राया, पर उसके पास देने को कुछ भी नहीं था। यह आवाज पड़ोसियों ने भी सुनी।

देवपति ने पुनः कहा—"मुझे एक सौ रुपये दो।"

मेंढक फिर तीन बार टर्राया।

पड़ोसियों ने सोचा—'हमने व्यर्थ ही छोटे मेंढक को चुराया। वह तो एक बार ही टर्राता है। हमें इस बड़े मेंढक को चुराना चाहिए। यह तो तीन गुनी चीजें देता है।'

रात को वे देवपति के घर में घुसे और छोटे मेंढक को वहाँ छोड़ बड़े मेंढक को पकड़ा और अपने घर ले गए।

सुबह देवपति की आँख खुली। उनका छोटा मेंढक उन्हें मिल गया था।

देवपति की पत्नी ने कहा—"अब यहाँ रहना ठीक नहीं।"

उन्होंने मेंढक से मकान और धन माँग लिया। पाँच दिन तक मेंढक उनके पास रहा, फिर वह पास के तालाब में चला गया।

उधर जब पड़ोसियों ने बड़े मेंढक से कहा—"हमें एक हजार रुपये दो," तो मेंढक जोर-जोर से टर्राने लगा। देने को उसके पास कुछ भी नहीं था।

पड़ोसियों ने सिर पीट लिया। वे मेंढक को मारने दौड़े, पर मेंढक उछलता हुआ तालाब में जा कूदा।

□

# रसोई महक उठी

महाराज पुष्पपाल सिंह की राजधानी थी शिवपुरी। ऊँचे-ऊँचे महलों एवं बाग-बगीचों से भरी सुंदर नगरी।

दूर-दूर से व्यापारी यहाँ व्यापार के लिए आते थे। शिवपुरी के चारों ओर एक विशाल जंगल था। लोगों को इसी जंगल से होकर आना पड़ता था।

लगभग बीस कोस लम्बे क्षेत्र में फैले इस जंगल में हिंसक जानवर भी थे, परंतु व्यापारियों को जंगली जानवरों की अपेक्षा डाकू नाहर सिंह से अधिक भय लगता था। वह अपने गिरोह के साथ इसी जंगल में रहता था। वह बहुत निर्दयी व्यक्ति था। महाराज पुष्पपाल सिंह ने उसे पकड़ने के लिए कई बार सिपाही जंगल में भेजे, परंतु वह हर बार धोखा देकर बच निकला।

नाहर सिंह के कारण शिवपुरी में होने वाला व्यापार घटता जा रहा था। इससे राज्य की आय भी घटने लगी। प्रजा की भलाई के कामों में भी कमी आ गई।

शिवपुरी में एक बुढ़िया रहती थी। नाम था—वल्लभा। उसकी कोई संतान नहीं थी। पति की मृत्यु के बाद उसने अपनी संपत्ति बेचकर जंगल में एक धर्मशाला बनवा दी थी ताकि यात्रियों को सुविधा हो।

नगर छोडकर वह स्वयं भी धर्मशाला में रहने लगी।

आते-जाते व्यापारी धर्मशाला में रुकते तो वल्लभा उनके लिए खाना पका देती। जाते समय व्यापारी उसे अन्न-वस्त्र आदि दे जाते। इससे उसका गुजारा भी हो जाता था।

एक बार तीन दिन तक कोई व्यापारी उधर से नहीं गुजरा। बुढ़िया धर्मशाला में अकेली थी। रात घिर आई। वह सोने की तैयारी करने लगी। तभी किसी ने दरवाजा खटखटाया। वल्लभा ने दरवाजा खोला। देखा, बाहर छह साधु खड़े थे।

एक वृद्ध साधु बोला—"देवि! हम एक धर्म सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए शिवपुरी जा रहे हैं। रात हो गई है, अतः अब यहीं विश्राम करना चाहेंगे।"

वल्लभा साधुओं के लिए खाना बनाने लगी। लेकिन कई दिन से व्यापारियों के न आने के कारण भोजन-सामग्री कम पड़ गई। उसके पास केवल दो व्यक्तियों के खाने योग्य सामग्री बची थी।

वह सोचने लगी—'अब क्या करूँ? साधु भूखे रहेंगे तो पाप लगेगा।'

वृद्ध संन्यासी बुढ़िया के मन की बात भाँप गया। उसने अपनी पोटली से मिट्टी के दो बर्तन निकाले और बुढ़िया को देते हुए बोला—"देवि! तुम अपना जीवन लोगों की सेवा में बिता रही हो, इसलिए हम तुम पर प्रसन्न हैं। ये दोनों बर्तन यज्ञभूमि की मिट्टी से बने हैं। जब भी तुम्हें आवश्यकता हो, तुम अन्नपूर्णा देवी का स्मरण कर इन पर जल छिड़क देना। ये दोनों भोजन से भर जाएँगे। फिर तुम जितना चाहो, इनसे भोजन निकाल लेना। लेकिन वह भोजन केवल धर्मात्मा एवं ईमानदार व्यक्ति ही खा सकेंगे। जब भी कोई निर्दयी अथवा बेईमान आदमी इस भोजन को खाना चाहेगा तो बर्तन खाली हो जाएँगे।"



: बुढ़िया बहुत प्रसन्न हुई। उसने श्रद्धापूर्वक दोनों
: रसोई में रख दिया, फिर संन्यासी के बताए अनुसार
का स्मरण कर उन पर जल छिड़का। सचमुच बर्तन
गए। भोजन की खुशबू से रसोई महक उठी।

बुढ़िया ने साधुओं को खाना खिलाया। अगली सुबह साधु चले गए।

अब बुढ़िया के पास जो भी अतिथि आता, वह उन बर्तनों पर जल छिड़कती और उसे भोजन दे देती। इस प्रकार कई माह बीत गए।

एक दिन धर्मशाला में दो व्यापारी रुके हुए थे।

अचानक रात को डाकू नाहर सिंह धर्मशाला में पहुँच गया। उसने व्यापारियों से कहा—"जिसके पास जो कुछ है, निकाल दो।"

डरते हुए व्यापारियों ने अपना सब सामान नाहर सिंह को सौंप दिया।

आज नाहर सिह को काफी धन मिला था। उसने बुढ़िया से कहा—"हमें भूख लगी है। हम खाना भी यहीं खाएँगे।"

डाकू की बात सुन बुढ़िया रसोई में गई। अन्नपूर्णा का स्मरण कर उसने बर्तनों पर जल छिड़का। पर यह क्या ! दोनों बर्तन बिलकुल खाली पड़े रहे। बुढ़िया समझ गई, डाकू निर्दयी और बेईमान हैं।

बुढ़िया ने नाहर सिंह से कहा—"मेरे पास भोजन-सामग्री नहीं है।"

बुढ़िया की बात पर डाकू सरदार को गुस्सा आ गया। उसने अपने साथियों से कहा—"इसकी रसोई की तलाशी लो। जरूर कुछ न कुछ मिलेगा।"

डाकुओं ने पूरा कमरा छान मारा, पर कहीं भोजन-सामग्री नहीं मिली। निराश होकर वे वहाँ से चले गए।

डाकू अभी कुछ ही दूर गए थे कि वर्षा होने लगी।

नाहर सिंह ने साथियों से कहा—"चलो वापस, धर्मशाला में चलकर रात बिताते हैं।"

वे सब वापस धर्मशाला में पहुँचे। तब तक धर्मशाला में तीन और यात्री आ चुके थे। नाहर सिह ने देखा, तीनों यात्री बुढ़िया की रसोई में बैठे खाना खा रहे हैं। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

उसने कड़ककर कहा—''अरी बुढ़िया! तू हमसे चालाकी करती है! अब बता, यह भोजन कहाँ से आया?''

डाकू की कर्कश आवाज सुनकर बुढ़िया डर गई। उसने नाहर सिह को पूरी कहानी कह सुनाई।

बुढ़िया की बात सुन नाहर सिह को दोनों बर्तनों पर बहुत गुस्सा आया। उसने अपने साथियों को आदेश दिया—''इन बर्तनों को उठाकर अपने साथ ले चलो।''

चार डाकू बर्तन उठाने के लिए आगे बढ़े। वे ज्यों ही बर्तन उठाने लगे, बर्तन बहुत भारी हो गए। चारों मिलकर भी उन्हें हिला न सके।

नाहर सिंह खुद आगे बढ़ा। उसने भी पूरा जोर लगाया, पर बर्तन न उठा सका। गुस्से में भरकर उसने अपनी तलवार निकाली और बर्तनों पर प्रहार करना चाहा, परंतु उसके हाथ वहीं के वहीं रुक गए। वह पैर से ठोकर मारना चाहता था, पर पैर भी जड़ हो गए। डाकू सरदार को समझ नहीं आ रहा था कि क्या करे? उसके साथी उसे छुड़ाने के लिए आगे बढ़े। ज्यों ही उन्होंने सरदार का स्पर्श किया, वे भी जड़ हो गए।

अब तो डाकू घबरा गए और बुढ़िया के सामने गिड़गिड़ाने लगे। नाहर सिंह बोला—''अम्माँ! तुम मेरा सारा धन ले लो, पर मुझे मुक्त कर दो।''

बुढ़िया भी हैरान थी। कल तक जिस डाकू की आँखों से क्रोध बरसता था आज वह रो रोकर प्राणों की भीख माँग रहा है



अगले दिन धर्मशाला में रुके व्यापारियों ने शिवपु
री बात राजा को बता दी। महाराज अपने सैनिकों व

बुढ़िया की धर्मशाला में पहुँचे। राजा को देखते ही डाकू थर-थर काँपने लगे।

बुढ़िया ने महाराज को पूरी आपबीती कह सुनाई।

राजा ने झुककर बर्तनों को प्रणाम किया।

राजपुरोहित ने मंत्रों द्वारा बर्तनों की स्तुति की।

दोनों बर्तन पुनः हलके हो गए। डाकू भी अब हिलने-डुलने लगे थे। पर वे भागते, इससे पहले ही सिपाहियों ने उन्हें बंदी बना लिया। राजा के आदेश से डाकुओं को कारागार में डाल दिया गया।

व्यापारियों ने डाकू नाहर सिंह की गिरफ्तारी का समाचार सुना तो वे खुशी से उछल पड़े। सब लोग हँसते-गाते धर्मशाला तक आए।

राजा ने बुढ़िया से कहा—''अम्माँ जी! हमारी इच्छा है कि आज हम सब आपके हाथों पवित्र बर्तनों का प्रसाद ग्रहण करें।''

वल्लभा ने तुरंत अन्नपूर्णा का स्मरण कर बर्तनों पर जल छिड़का और सबको भरपेट भोजन खिलाया।

अब किसी को भय नहीं था। शिवपुरी में व्यापार फिर से दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति करने लगा।

□

# सींग में माला

बेनीपुर गाँव में नंदू ग्वाला रहता था। उसके दो पुत्र थे। बड़े का नाम था गोपी और छोटा था शंभू। गोपी बेईमान और धूर्त था, पर शंभू था भोलाभाला और ईमानदार। नंदू के पास अनेक गायें थीं। उसने दोनों पुत्रों को काम बाँट दिया था।

शंभू गाय चराता था। गोपी दूध दुहता और उसे शहर बेचकर आता। वह रोज दूध में पानी मिला देता। इससे जो अधिक पैसा मिलता, उसे वह छिपाकर रखता था। इस तरह उसने काफी धन जमा कर लिया।

दूध निकाल लेने के बाद शंभू गायों को पास के जंगल में ले जाता। गायें वहाँ हरी-हरी घास चरतीं। एक दिन गोपी बीमार हो गया। वह दूध बेचने न जा सका। नंदू ने शंभू से कहा—"बेटा! आज दूध लेकर तुम शहर चले जाओ।"

पिता का कहा मान शंभू शहर चला गया। उसने दूध में पानी नहीं मिलाया। ग्राहकों को पहली बार असली दूध पीने को मिला। वे बहुत खुश हुए। एक ग्राहक ने शंभू से कहा—"तुम ही दूध लेकर आया करो, क्योंकि तुम्हारा भाई दूध में पानी मिला देता है।"

शंभू बोला—"दूध लाने का काम मेरे बड़े भाई का है। मैं तो गायें चराने जंगल में जाता हूँ।"

दूसरा ग्राहक बोला—"हम तुम्हारे पिता से बात करेंगे।"



दिन कुछ ग्राहक आकर नंदू से मिले। एक ग्राहक ने 'नंदू भाई! शंभू को दुध देकर भेजा करो। वह बढ़िया ' है गोपी दूध में पानी मिला देता है '

गोपी पास ही चारपाई पर लेटा था। ग्राहकों की बात सुनकर उसे गुस्सा आ गया, क्योंकि इससे उसकी कमाई ही बंद हो रही थी।

शाम को गोपी ने पिता से कहा—"पिता ज़ी! शहर के लोग चालाक होते हैं। वे शंभू को ठग लेंगे। इसलिए दूध लेकर मैं ही जाऊँगा।"

पर नंदू ग्राहकों को नाराज नहीं करना चाहता था। उसने शंभू से कहा—"अब हर रोज दूध लेकर तुम शहर जाओगे। गोपी गायें चराने जाएगा।"

यह सुन गोपी मन मसोसकर रह गया। अब वह गायों को लेकर जंगल में जाता। कई बार गुस्से में वह गायों को पीट भी देता था।

एक दिन अचानक नंदू की तबीयत बहुत खराब हो गई। उसने पुत्रों को बुलाया। कहा—"लगता है, मेरा अंतिम समय आ गया है। मेरी मृत्यु के बाद तुम दोनों गायों को बराबर संख्या में बाँट लेना।" इतना कहकर नंदू ने हमेशा के लिए आँखें मूँद लीं।

कुछ दिन बाद गोपी ने सोचा—'मुझे शंभू से अलग हो जाना चाहिए। मैं जल्दी ही और अधिक धन कमाकर साहूकार बन जाऊँगा।' पर तभी उसे ध्यान आया—'शंभू तो असली दूध बेचेगा। फिर भला मुझसे पानी मिला दूध कौन खरीदेगा ? इसका भी कोई उपाय करना चाहिए।' वह काफी देर तक सोचता रहा। एक दिन वह शंभू से बोला—"अब हम इकट्ठे नहीं रहेंगे। तुम अपना दूध अलग बेचना।"

शंभू ने उत्तर दिया—"भैया! आप जैसा ठीक समझें, वैसा कर लें।"

गोपी ने चालाकी से बूढ़ी और कमजोर गायें शंभू को दे दीं तथा स्वस्थ और अधिक दूध देने वाली गायें अपने पास रख लीं उसने सोचा 'शंभू की गायें थोड़ा दूध देंगी इससे लोगों की जरूरत

पूरी नहीं होगी। हारकर वे मुझसे पानी मिला दूध ऊँचे दामों पर खरीदेंगे।'

वास्तव में शंभू की गायें कम दूध देती थीं। फिर भी वह उनकी खूब सेवा करता था। शहर से लौटकर उन्हें जंगल ले जाता। गायें हरा चारा खाकर खुश हो जाती थीं। धीरे-धीरे उनका दूध बढ़ रहा था।

उधर गोपी की गायें अधिक दूध देतीं, फिर भी वह उसमें और पानी मिला देता। इस तरह उसने खूब धन कमाया।

एक दिन गोपी दूध लेकर शहर जा रहा था। रास्ते में उसे कुछ साधु आते दिखाई दिए। उन्होंने गेरुए वस्त्र पहन रखे थे। एक बूढ़े साधु के गले में रुद्राक्ष की माला भी थी। पास आने पर बूढ़े साधु ने कहा—"बेटा! हम गंगास्नान के लिए जा रहे हैं। हमारी पूजा का समय हो गया है। पूजा के लिए कुछ दूध चाहिए।"

गोपी बोला—"मैं आपको मुफ्त में दूध नहीं दे सकता। इसके लिए आपको पैसे देने होंगे।"

साधु ने कहा—"बेटा! साधुओं के पास पैसा कहाँ से आएगा? लेकिन यदि तुम हमें दूध दे दो तो मैं तुम्हें रुद्राक्ष की अपनी यह माला दे दूँगा।"

यह सुन गोपी ने सोचा—'मुझे माला का क्या करना है? यह मेरे किस काम आएगी?'

"बाबा! मेरे पास फालतू दूध नहीं है।" कहकर गोपी आगे बढ़ गया।

निराश होकर साधु भी चल पड़े। अभी कुछ ही दूर चले थे कि सामने से शंभू आता नजर आया। पास आने पर बूढ़े साधु ने कहा—"बेटा! हम गंगास्नान के लिए जा रहे हैं। हमारी पूजा का समय हो गया है इसके लिए थोडा दूध चाहिए

शंभू हाथ जोड़कर बोला—"साधु बाबा! मेरा दूध आपकी पूजा के काम आए, यह मेरा सौभाग्य होगा।" इतना कहकर उसने दूध का बर्तन साधुओं के सामने रख दिया।

साधुओं ने उसमें से आवश्यकता के अनुसार दूध ले लिया। फिर वहीं बैठकर पूजा की। पूजा समाप्त कर बूढ़ा साधु रुद्राक्ष की माला शंभू को देने लगा।

शंभू बोला—"बाबा! यह माला तो आपके गले में ही शोभा देती है। आप इसे अपने पास ही रख लें।"

साधु ने कहा—"पुत्र! तुमने आज दूध देकर हमारी पूजा सम्पन्न करवाई है, इसलिए मैं प्रसन्न होकर तुम्हें यह भेंट दे रहा हूँ। यह माला मंत्रों द्वारा पवित्र की गई है। गाय के घी, दूध, दही आदि से पंचामृत बनाकर इसकी पूजा करो तो इसका एक मनका हर रोज सोने का हो जाएगा। हम तो साधु हैं। सोना हमारे किस काम का। तुम दयालु और भले आदमी हो, इसीलिए मैं तुम्हें यह माला देना चाहता हूँ।"

' साधु का कहा मान शंभू ने माला ले ली। माला लेकर वह घर आ गया। शाम को उसे गोपी मिला। उसने सारी बात गोपी को बताई। गोपी बहुत हैरान हुआ। उसने कहा—"हमें पंचामृत बनाकर माला की जाँच कर लेनी चाहिए।"

शंभू ने गाय के दूध, घी और दही आदि से पंचामृत बनाया। माला को उसमें भिगोकर उसकी पूजा की। शंभू ने देखा—थोड़ी देर में माला का एक मनका सचमुच सोने का हो गया था।

सोने का मनका देख गोपी पछताने लगा—'यदि मैं साधुओं को दूध दे देता तो आज यह माला मेरे पास होती।' अब वह किसी तरह माला को हथियाना चाहता था। उसने शंभू से कहा—"तुम्हारा कच्चा घर है वहाँ से कोई भी माला चुरा लेगा तुम



ला मेरी हवेली में रख दो। वहीं इसकी पूजा-अर्चना करते
जब सारे मनके सोने के हो जाएँ, तब तुम इसे ले आना।''
भू भोला था। उसने माला गोपी के घर रख दी। पर रात में
ने माला जंगल की झाड़ी में छिपा दी। अगली सुबह शंभू
त लेकर माला की पूजा करने गोपी के घर आया। उसने
क वहाँ माला नहीं थी उसने गोपी से पूछा

गोपी बोला—"मुझे तो कुछ मालूम नहीं। तुमने अपने हाथों से ही उसे रखा था। हो सकता है, साधु ने जादुई माला दी हो, जो अपने आप गायब हो गई। क्या पता, माला चूहे उठा ले गए हों।"

गोपी की बात सुन शंभू चुप हो गया। उसे लगा—गोपी झूठ बोल रहा है। पर अब क्या हो सकता था! शंभू अपने घर आ गया।

गोपी रोज पंचामृत ले जंगल में जाता। वहाँ माला की पूजा करता। इससे हर रोज एक मनका सोने का हो जाता। गोपी की इच्छा थी कि जल्दी से जल्दी माला के सारे मनके सोने के हो जाएँ। फिर तो इसे बेचकर वह गाँव में सबसे धनवान हो जाएगा।

शंभू माला की बात भूलकर अपने काम में जुट गया। एक दिन वह दूध बेचकर शहर से लौटा। फिर अपनी गायों को चराने जंगल में ले गया।

गायें घास चरती रहीं। वह एक शिला के पास पेड़ की छाया में बैठ गया। अचानक एक बूढ़ी गाय चरते-चरते उसी झाड़ी के पास पहुँच गई, जहाँ गोपी ने माला छिपाई थी। गाय ने घास चरने के लिए झाड़ी में मुँह मारा। तभी माला गाय के सींग में उलझ गई।

शाम को शंभू गायों को लेकर घर लौटने लगा। अचानक उसकी नजर बूढ़ी गाय के सींग में उलझी चीज की ओर गई। उसने पास जाकर देखा। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यह तो वही माला थी। इसमें रुद्राक्ष के केवल दो मनके बचे थे। शेष सभी मनके सोने के हो चुके थे। शंभू समझ गया कि गोपी ने ही माला चुराई थी। रास्ते में उसे गोपी मिला। शंभू ने उसे माला दिखाते हुए कहा—"गोपी! जादुई माला मेरे पास फिर लौट आई है।"

गोपी ने माला देखी तो सन्न रह गया। उससे कुछ भी कहते न बना। वह शर्मिंदा होकर शंभू से क्षमा माँगने लगा। शंभू बिना कुछ कहे घर आ गया। उसने दो दिन और पूजा की। सारी माला सोने की हो गई।

उसने माला बेचकर और गायें खरीद लीं। अब उसके पास गोपी से अधिक गायें हो गईं। उसने पक्की हवेली भी बनवा ली। कुछ धन गरीबों को दान कर दिया। उसके पास काफी दूध था, इसलिए किसी भी ग्राहक को गोपी से पानी मिला दूध नहीं खरीदना पड़ा। हारकर गोपी को भी असली दूध बेचना पड़ा—वह भी सस्ते दामों पर।



# हिलने लगी धरती

राजा शुभेंद्र का राज्य हिमालय की तलहटी में दूर तक फैला हुआ था। राज्य का अधिकतर भाग हरा-भरा और उपजाऊ था। परंतु लोगों के मन में एक डर बसा हुआ था। यहाँ भूकंप बहुत आते थे, जिनसे काफी तबाही हो जाती थी।

राजा शुभेंद्र विलासी था। प्रजा की भलाई के कार्य करने की बजाय वह खजाने के धन को खुद पर खर्च कर देता। उसके महल की छत हलकी लकड़ी से बनी थी, इसलिए उस पर भूकंप का कम असर होता था। कभी छत गिर जाती, तो भी जान-माल का नुकसान न होता। कारीगर उसे फिर तैयार कर देते।

इसी राज्य में पहाड़ी के नीचे बसा था एक छोटा-सा गाँव शीतलपुर। गाँव में किसानों के लगभग दो सौ घर थे। किसान खेती करते और पशु पालते थे। गाँव से होकर एक रास्ता पहाड़ी तक जाता था। इसी रास्ते से चलकर लोग अपने पशुओं को पहाड़ी पर चराने ले जाते थे। पहाड़ी से आगे घना जंगल था। वहीं गुफा में एक साधु बाबा तपस्या करते थे। वह साल में सिर्फ एक माह के लिए नीचे मैदान में आते। लोगों से मिलकर उनका हालचाल पूछते। बाबा अपने साथ जंगल से दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ भी लाते थे, जिनसे बीमारों का इलाज करते। एक महीने बाद बाबा फिर गुफा में चले जाते।

लोग बाबा का बहुत आदर करते थे। बच्चे तो उनक
हते, क्योंकि उनके लिए बाबा अपनी पोटली में जंगल
लाते थे।



एक बार बरसात के दिनों में तेज भूकंप आया। धरती काँपने लगी। अचानक जमीन में जगह-जगह गड्ढे हो गए। उनसे पानी निकलने लगा। बाढ़ का-सा दृश्य उपस्थित हो गया। लोगों के घर ढह गए। कई आदमी और पशु दबकर मर गए। चारों तरफ त्राहि-त्राहि मची हुई थी।

साल-भर तपस्या कर बाबा गाँव की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें लोगों के चीखने-चिल्लाने का स्वर सुनाई दिया। उनके कदम ठिठक गए। फिर कुछ क्षण सोचते रहे। सामने शिला के पास एक भारी गोल पत्थर पड़ा था। बाबा ने मंत्र पढ़कर कमंडल से उस पर जल छिड़का। अचानक पत्थर हिलने लगा। कुछ क्षण बाद वह बहुत छोटा होकर स्थिर हो गया। बाबा मुस्कराए। उन्होंने पत्थर उठाकर अपनी पोटली में डाल लिया और गाँव की ओर चल पड़े।

इस बार बाबा का स्वागत करने के लिए गाँव के बाहर कोई नहीं खड़ा था। सब लोग भूकंप में घायल अपने सगे-संबंधियों की सेवा में जुटे थे। फल लेने वाला कोई बच्चा भी नहीं दिखाई दिया। बाबा गाँव में आए। घायलों की मरहमपट्टी की। उन्हें देख गाँव वालों का कुछ ढाढ़स बँधा। उन्होंने कहा—"बाबा, इन भूकंपों ने हमें बरबाद कर दिया है। तिनका-तिनका जोड़कर हम अपने घर बनाते हैं, परंतु भूकंप का एक ही झटका सब नष्ट कर देता है।"

बाबा गंभीर होकर उनकी बात सुनते रहे। अगले दिन उन्होंने सब गाँव वालों को इकट्ठा किया। पोटली से पत्थर निकाला और बोले—"जब तक यहाँ यह पत्थर है, इस गाँव में भूकंप से धरती नहीं हिलेगी।"

भूकंप न आने की बात सुनकर ग्रामीण खुश हो गए। उन्होंने एक मंदिर बनाकर बाबा का दिया पत्थर उसमें रख दिया, फिर

उसकी पूजा करने लगे। बाबा तपस्या के लिए पुनः जंगल में चले गए।

दो माह ही बीते थे कि एक दिन फिर जोरदार तूफान आया। लोग डर गए, कहीं फिर भूकंप न आ जाए। पर इस बार शीतलपुर में धरती नहीं हिली। अगले दिन पता चला कि आसपास के गाँवों में कल भूकंप के जोरदार झटके लगे थे। राजा शुभेंद्र के महल की तो छत ही गिर गई।

शीतलपुर के लोग समझ गए कि बाबा के चमत्कारी पत्थर के कारण उनके गाँव में धरती नहीं हिली। धीरे-धीरे यह बात चारों तरफ फैल गई कि शीतल्पुर के मंदिर में लगे पत्थर के कारण वहाँ भूकंप नहीं आते।

राजा शुभेंद्र ने सुना तो उसने अपने सैनिकों से कहा—''वह जादुई पत्थर लाकर महल के मंदिर में लगाओ।''

राजा का आदेश मान सैनिक शीतलपुर पहुँचे और मंदिर से पत्थर उठाकर राजमहल में ले आए। ग्रामीण चाहकर भी सैनिकों का विरोध न कर सके। राजपुरोहित ने महल के मंदिर में वह चमत्कारी पत्थर स्थापित करवा दिया। राजा निश्चित हो गया, अब भूकंप से उसका कोई नुकसान नहीं होगा।

कुछ दिन बाद सुबह-सुबह अचानक धरती काँप उठी। शीतलपुर में पुनः भूकंप के झटके लगने लगे। लोग डरकर घरों से बाहर निकल आए। इतने तेज भूकंप में भी राजमहल की धरती बिलकुल नहीं हिल रही थी। राजा को विश्वास हो गया, अब भूकंप उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे। उसने मंदिर में पूजा-अर्चना भी बंद कर दी।

साल बाद जब बाबा गाँव आए तो लोगों ने उन्हें पूरी कहानी कह सुनाई लोगो की बात सुन बाबा को बहुत दु ख हुआ वह

राजमहल की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने राजा से कहा—"राजन्! तुमने गरीब किसानों को बेसहारा छोड़कर चमत्कारी पत्थर अपने महल में रखवा लिया। यह ठीक नहीं है। राजा का कर्तव्य है, संकट में प्रजा की रक्षा करे।"

राजा बोला—"बाबा! भूकंप से अगर कुछ ग्रामीण मर भी जाएँ तो क्या फर्क पड़ता है? राजमहल सुरक्षित रहना चाहिए।"

बाबा कुछ देर मौन रहे, फिर धीरे से बोले—"क्या तुम उस पत्थर की पूजा-अर्चना भी करते हो?"

राजा ने हँसकर कहा—"अब मैं सुरक्षित हूँ। पूजा की क्या जरूरत?"

बाबा बोले—"तप और पूजा से यह पत्थर चमत्कारी बना था। तुमने इसकी उपासना बंद कर दी, इसलिए यह तो अब एक साधारण चट्टान का टुकड़ा भर रह गया है। संभव है, यह अपने पहले रूप में आ जाए।"

वे बातें कर ही रहे थे कि अचानक तेज भूकंप आया। देखते-देखते चमत्कारी पत्थर का आकार बढ़ने लगा। कुछ ही देर में वह एक भारी शिला का रूप ले चुका था। पत्थर के बढ़ते भार से धरती पर विशाल गड्ढा बन गया। धीरे-धीरे महल जमीन में धँसने लगा। रानी और राजकुमार भी महल में फँसे रह गए थे।

आँखों के सामने सब कुछ लुटता देख शुभेंद्र पागलों की तरह इधर-उधर भागने लगा।

बाबा ने कहा—"राजन्! आज तुम तड़प रहे हो। जरा गरीबों के बारे में भी सोचो, उन पर क्या बीत रही होगी?"

राजा साधु के पैरों में लोट गया। बोला—"बाबा! मुझे क्षमा कर दो। मेरे महल और परिवार को बचा लो।"

बाबा को दया आ गई। उन्होंने कमंडल से जल लेकर पत्थर पर छिड़क दिया। फिर मंत्रों का उच्चारण कर पूजा-अर्चना की। पत्थर का आकार फिर छोटा हो गया।

बाबा बोले—"शुभेंद्र! दूसरों के दुःख को अपना दुःख समझो। सच्चे मन से लोगों की सहायता करोगे तो पहाड़ जैसे कष्ट भी इस पत्थर की तरह छोटे हो जाएँगे।"

राजा बोला—"बाबा, मैं आपको वचन देता हूँ, भविष्य में प्रजा की भलाई करता रहूँगा। आप इस पत्थर को शीतलपुर के मंदिर में ही लगा दीजिए।"

उसे अपनी गलती पता चल गई थी।



# मीठे बेर

किसी गाँव में हरिया नाम का एक किसान रहता था। उसके पास पुरखों की एक कुल्हाड़ी एवं कुदाल थी। उनमें अद्भुत जादुई शक्ति थी। कुदाल को खेत की जमीन पर रख, मंत्र पढ़कर कहा जाए तो कुदाल सारे खेत को खोद देती थी। ऐसे ही कुल्हाड़ी मंत्र पढ़ने पर पूरा वृक्ष काट डालती थी।

हरिया के पिता एवं दादा ने इन जादुई कुल्हाड़ी और कुदाल से खेतों में खूब उपज की। लकड़ी काटकर धन कमाया। पर हरिया बड़ा आलसी था। उसे कुदाल द्वारा खोदी जमीन में बीज बोने और कुल्हाड़ी द्वारा काटी लकड़ियों को बेचने में भी आलस आता था। इस तरह काम न करने से वह गरीब हो गया। भूखों मरने लगा, पर काम करने की कोई बात उसे फिर भी पसंद नहीं आई।

एक दिन उसकी पत्नी ने कहा—"यूँ घर में पड़े रहने से कुछ नहीं होगा। जाओ, कुछ कमाकर लाओ।"

हरिया कुल्हाड़ी उठाकर घर से निकल पड़ा। अभी वह कुछ ही दूर गया था, उसे नदी-किनारे पीपल का एक वृक्ष दिखाई दिया। वहाँ बैठकर हरिया बीते दिनों को याद करने लगा। अचानक एक बाज वहाँ आया और आकर हरिया के पास बैठ गया।

हरिया ने पूछा—"तुम कौन हो?"

बाज ने उत्तर दिया—"मैं इस वृक्ष पर रहता हूँ। तुम्हारे हाथ में कुल्हाडी देख मेरा मन भय से काँप उठा अभी मेरे बच्चे छोटे

नहीं सकते। घोंसला टूट जाने से वे मर जाएँगे। क्ष को न काटो।''

बोला—''मैं क्या करूँ? मुझे धन चाहिए। यदि छ धन दे सको तो मैं वृक्ष नहीं काटूँगा।''

छ देर चुप रहा। फिर बोला—''मेरे पास सोने न हैं। तुम उन्हें ले जाओ। एक कंगन बेचकर -पीने का सामान खरीद लेना। दूसरे कंगन के ोई व्यापार कर लेना।''

ने कंगन ले लिए और कुल्हाड़ी उठाकर घर चल पड़ा। आते ही पत्नी को सारी बात बताई।



पत्नी बहुत प्रसन्न हुई। उन्होंने एक कंगन बेचकर खाने-पीने का सामान मँगा लिया। पूरा परिवार मजे से रहने लगा। लेकिन पंद्रह दिनों में ही दोनों कंगन बिक गए। हरिया का परिवार फिर भूखों मरने लगा।

उसने कुल्हाड़ी उठाई और उसी वृक्ष के पास जा उसे काटने लगा। पूरा वृक्ष कट जाने पर भी कोई पक्षी नहीं आया। उस बाज के बच्चे बड़े होकर उड़ना सीख गए थे। वे वहाँ से जा चुके थे। हरिया निराश होकर लौट आया।

अगले दिन कुदाल उठाकर वह जंगल की ओर निकल गया। काफी दूर चलने के बाद उसे कुछ थकावट महसूस हुई। वह एक कुएँ के पास बैठ गया। कुएँ के इर्द-गिर्द बहुत-सी झाड़ियाँ उगी थीं। उन पर मीठे बेर लगे थे। हरिया ने सोचा—'इन बेरों को ही घर ले चलूँ। एक-दो दिन निकल जाएँगे।' यह सोचकर उसने कुदाल को झाड़ियों के पास रख मंत्र पढ़ने आरम्भ किए। तभी एक खरगोश निकलकर बाहर आया और कहने लगा—"भैया, ऐसा न करो। इन झाड़ियों में ही मेरा परिवार रहता है। अगर ये कट गई तो हम सब मारे जाएँगे।"

हरिया ने कहा—"मैं भूखा हूँ। मुझे कुछ खाने को चाहिए। यदि तुम मुझे खाने को दो तो मैं झाड़ियाँ नहीं काटूँगा।"

खरगोश झाड़ियों में गया और एक पोटली लाकर हरिया को दे दी। कहने लगा—"इसमें फलों के बहुत स्वादिष्ट बीज हैं। तुम प्रतिदिन चार बीज भिगो देना। वे फूलकर मोटे हो जाएँगे। तुम दो-दो खा लेना। तुम्हारी भूख मिट जाएगी। कुछ बीज जमीन में बो देना। एक महीने में ही उन पर फल आ जाएँगे।"

हरिया पोटली लेकर घर आ गया। आकर सारी बात पत्नी को बताई। पत्नी ने कुछ बीज भिगो दिए। थोडी देर बाद दोनों ने भीगे

बीजो को खाया वास्तव मे वे बहुत स्वादिष्ट थे पति पत्नी बहुत खुश हुए जब भी भूख लगती, बीज भिगोते और खा लेते . बीज बोने की बात तो हरिया भूल ही गया। कुछ दिन में बीज भी समाप्त हो गए। हरिया बीज न बोने के लिए पछतावा करने लगा।

और कोई उपाय न देख उसने कुदाल उठाई और उसी स्थान पर पहुँचा, जहाँ खरगोश का बिल था। कुदाल को जमीन पर रख वह मंत्र पढ़ने लगा। काफी समय बीत गया, पर खरगोश नहीं आया। आता भी कैसे! वह तो डरकर परिवार सहित दूर चला गया था।

दुखी हरिया घर लौट आया। भूख से व्याकुल हो अगले दिन दोनों पति-पत्नी कुल्हाड़ी एवं कुदाल ले जंगल की ओर चल पड़े। रास्ते में जमींदार के खेत थे।

हरिया ने जमींदार के पास जाकर कहा—''तुम मुझे खाने के लिए दो, नहीं तो मैं कुल्हाड़ी से तुम्हारे सारे पेड़ काट डालूँगा।''

हरिया की पत्नी बोली—''मैं भी कुदाल से तुम्हारे सारे शकरकंद उखाड़ दूँगी।''

जमींदार डर गया। जादुई कुदाल एवं कुल्हाड़ी की चर्चा चारों ओर फैली थी। उसने हरिया को कुछ भुट्टे और फल दे दिए। हरिया अपने घर लौट आया। दोनों अपनी चालाकी पर खुश थे।

अगले दिन दोनों फिर जमींदार के खेत पर पहुँच गए। बोले—''हमें आज फिर खाने को दो।''

जमींदार ने सोचा—'इस तरह तो ये मेरी सारी फसल खा जाएँगे।' वह सीधा राजा के पास गया और उन्हें सारी बात बताई।

राजा ने हरिया को बुलाया। डाँटकर पूछा—''क्या जमींदार की बात सच है ?''

हरिया ने अपनी गलती मान ली। राजा ने कुदाल एवं कुल्हाड़ी छीन लीं। फिर बोला—"तुम जैसे आलसी के लिए ये जादुई चीजें भी बेकार हैं। जाओ, ये नहीं मिलेंगी। अब मेहनत करके अपना पेट भरो।"

हरिया मुँह लटकाए घर आ गया। अब और कोई चारा नहीं था। दूसरे दिन से ही वह खेतों में काम करने लगा।

□□

ा)

ास्त्री

ाओं मे
प्ताहिक
त रहा।
र्शन के
र्य।

ार भये
वरदान',
ा स्वप्न'
निबंध);
त्य)

परिषद्
। बिहार
ामरनाथ
। कहानी
शकुंतला
नेत।

ारी

कॉलोनी



14

छी
भी
पे

थ

## श्रीनिवास वत्स

•

**जन्म**

23 दिसंबर, 1959, रोहतक (हरियाणा)

**शिक्षा**

एम०ए०, बी०एड०, पी०जी०जे०डी०, शास्त्री

**लेखन एवं प्रकाशन**

हिंदी की लगभग सभी महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं व्यंग्य लेख प्रकाशित। 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में 'लघु व्यंग्य स्तंभ' काफी चर्चित रहा। पिछले बीस वर्षों से आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के लिए लेखन। बाल-साहित्य में विशेष कार्य।

**प्रकाशित पुस्तकें**

'प्रश्न एक पुरस्कार का', 'व्यंग्य तंत्र', 'चोर भये कोतवाल' *(व्यंग्य)*; 'गूँगा देश', 'यमराज के वरदान', 'नए महाराज' *(नाटक)*; 'पाशमुक्ति', 'माँ का स्वप्न' *(कहानी/उपन्यास)*; 'आकार लेते विचार' *(निबंध)*; कहानियों की आठ पुस्तकें *(बाल-साहित्य)*

**पुरस्कार**

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एव प्रशिक्षण परिषद् (एन०सी०ई०आर०टी०) द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार। बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा 'डॉ० अमरनाथ झा' पुरस्कार। हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा कहानी के लिए तीन पुरस्कार। चिल्ड्रेंस बुक ट्रस्ट एवं शकुंतला सिरोठिया बाल-साहित्य पुरस्कार से सम्मानित।

**संप्रति**

रक्षा लेखा विभाग मे राजपत्रित अधिकारी

**संपर्क**

शास्त्री सदन, 392 बी, शास्त्री मार्ग, इंदिरा कॉलोनी
रोहतक (हरियाणा)